योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण

डॉ. हरवंशलाल ओबराय
स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम, भक्तानन्द
शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

श्री सुशील कुमार ताम्बी
प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
A/3 आर्य नगर
एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
मुरलीपुरा, जयपुर 302039
फोन : 0141-2233765
मो. : 09829547773

ज्ञान गंगा प्रकाशन
पाथेय भवन,
बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
दूरभाष : 0141-2371563

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना
आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
नई दिल्ली 110055
फोन : 011-23675667

जागृति प्रकाशन
श्री कृष्णानन्द सागर
एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
दूरभाष : 0120-2538101
मो. : 09871143768

ISBN 978-93-84133-16-0

प्रथम संस्करण : 2016 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : अस्सी रुपये मात्र

आवरण : गौरी शंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

YOGESHWAR BHAGWAN SHRIKRISHN
Dr. Harbans Lal Oberai and Swami Samvit Subodhgiri ₹ 80

प्रकाशकीय

भगवान् श्रीकृष्ण से अधिक व्यापक एवं सर्वतोमुखी व्यक्तित्व विश्व के इतिहास में सम्भवतः कोई नहीं हुआ होगा। लोक और परलोक, आदर्श एवं यथार्थ, कर्म एवं ज्ञान, प्रवृत्ति एवं निवृत्ति, शक्ति और शील, लीला और मर्यादा, यज्ञ एवं युद्ध, वैभव एवं विरक्ति, राजनीति एवं ब्रह्मज्ञान—सभी में वे चरमोत्कर्ष पर प्रतिष्ठित अलौकिक महाविभूति हैं।

यानी भगवान् श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व इतना अनन्तमुखी है कि यह कहना कठिन है कि वे क्या नहीं थे। योग-योगेश्वर, ज्ञानदाता, सिद्ध, साधक, मित्र, सारथि, रक्षक, राष्ट्रनिर्माता, आदर्श कर्मयोगी, आदर्श प्रेमी, आदर्श शासक, सफल राजनीतिज्ञ, शूर शिरोमणि, मानवता के गौरव, लोकनायक, लोक शिक्षक—वे सभी कुछ थे। पिछले 5000 वर्षों की गंभीर गवेषणा के पश्चात् भी अभी तक उनके बहुरंगी जीवन की अनेक-अनेक अज्ञात दिशायें खोजनी शेष हैं।

भगवान् कृष्ण का व्यक्तित्व इतना मोहक एवं हृदयस्पर्शी रहा है कि अनेक मुसलमान भक्त यथा रसखान, रहीम, बीबी चाँद, उस्मान, नजीर, मुर्तजा अली, ख्वाजा दिल मुहम्मद, रैहाना तैय्यब जी, अनेक सिक्ख गुरुओं एवं अनेक पश्चिमी ईसाई भक्तों एवं संतों ने भी उन्हें एवं उनकी गीता को अलौकिक काव्य पुष्पांजलियां चढ़ाकर पूजा है।

इंडोनेशिया का मुस्लिम नागरिक भी आज तक श्रीकृष्ण भगवान् की मनीषा एवं भीम, अर्जुन के बल-पौरुष की सौगंध खाता है। थाई देश, कम्बोडिया, लवदेश एवं मलाया आदि में असंख्य श्रीकृष्ण मंदिर विद्यमान हैं। नारा (जापान) में मुरली मनोहर श्रीकृष्ण की मूर्ति, आर्मेनिया के प्राचीन कृष्ण मंदिर, मंगोल भाषा में प्रचलित कृष्ण काव्य, अरब में हजरत मुहम्मद के चाचा श्री अबुल हिक्म द्वारा राम-कृष्ण की भूमि (भारत) की वंदना। ईरान, इराक, मिस्र, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड, अमेरीका आदि में गीता भक्तों की अलौकिक परम्परा, अणु बम के आविष्कारक डॉ. राबर्ट ओपनहीमर की गीता भक्ति तथा आधुनिक काल में सारे पश्चिमी देशों में कृष्ण भावनामृत संघ (हरे कृष्ण आंदोलन) के माध्यम से

सहस्रावधि विदेशियों की श्रीकृष्ण भक्ति एवं अमेरीका में न्यू वृंदावन एवं नवीनपुरी नगरी की स्थापना भगवान् कृष्ण के विश्वव्यापी व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हैं।

इस पुस्तक में योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के कुछ पहलुओं पर विचार किया गया और योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण से सम्बन्धित कुछ शंकाओं का निराकरण किया गया है। परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद एवं सांखला प्रिंटर्स के प्रिंटिग कार्य में सौहार्दपूर्ण सहयोग से प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि
मो. 09413769139

अनुक्रम

जन्माष्टमी : प्रथम प्रवचन

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः।।

भगवान् कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द, भगवान् वासुदेव सब जीवों में व्यापक हैं अर्थात् उनमें वास करने वाले वसुदेवजी के पुत्र और हरि हैं अर्थात् सब प्रकार के पाप-ताप का हरण करने वाले हैं, जो साक्षात् अनादि अनन्त परब्रह्म परमेश्वर ही हैं, जो शरणागतों के समस्त क्लेशों का नाश करने वाले हैं, जो गोविन्द हैं अर्थात् जो समस्त इन्द्रियों के स्वामी हैं, और सारी इन्द्रियों से जो सारा जगत् प्रतीत होता है, उसके स्वामी हैं; उन भगवान् कृष्णचन्द्र के चरणों में हम पुन-पुनः नमस्कार करते हैं।

भगवान् के एक श्लोक की स्तुति पर थोड़ा विचार करें—

प्रपन्नपारिजाताय तोत्त्रवेत्रैकपाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः।।

कुरुक्षेत्र की रणस्थली में भगवान् वासुदेव अपने प्रिय सखा अर्जुन को उपदेश कर रहे हैं। उस गीता रत्न में भगवान् का स्वरूप क्या है? प्रपन्न पारिजाताय—जो उनके प्रपन्न होता है शरणागत होता है उसके लिए भगवान् कल्पवृक्ष बन जाते हैं, शरणागतों की समस्त इच्छाओं की पूर्ति कर देने वाले। उसके मन की अन्तरतम की इच्छाओं को जो उसके लिए कल्याणकारी है, उसको भगवान् पूरा कर देते हैं।

तोत्त्रवेत्रैकपाणये—जो उस कुरुक्षेत्र की रणस्थली में गीता उपदेश की मुद्रा में रथ में बैठे हुए, घोड़ों की लगाम और हाथ में चाबुक थामे हुए जो ज्ञानमुद्रा में अपने प्रिय सखा अर्जुन को उपदेश कर रहे हैं। कृष्णाय—जो सारी सृष्टि को अपनी ओर आकृष्ट करने वाले, खींचने वाले, सबको केन्द्रीभूत करने वाले, ऐसे जो ज्ञानमुद्रा में श्रीकृष्ण हैं वो गीता का उपदेश कर रहे हैं। गीतारूपी अमृत का दोहन कर रहे हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूं। इस चित्र को थोड़ा हृदय में बैठाकर निहारें। देखें, कितना आनन्द आता है।

भगवान् शरणागतों के लिए कल्पवृक्ष हैं। कैसे शरणागतों के लिए कल्पवृक्ष हैं? जो सर्वतोभावेन भगवान् की चरण शरण में आ जाता है—कि भगवान्! मैं तो आपका हूं। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं—

राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है
या यूं भी वाह-वाह वा यूं भी वाह-वाह है

कुन्दन के हम बने हैं जो चाहे तू गला ले
दाओ न हो तो हमको तू आज आजमा ले।

हम तो कुन्दन के बने हैं भगवान् जब चाहे तेरी इच्छा हो गलाकर देख ले। कुन्दन को जलने का कौन डर है? अगर विश्वास न हो तो अभी इसी क्षण आजमा कर देख लो? अभी मौत भेज दो, अभी बिजलियां कड़क उठे, बड़ी मुसीबत आ जाए, हम आह कर जाएं, उफ कर जाएं, सी कर जाएं तो कहना इनसान का बच्चा नहीं था। अब तो भगवान् आपकी शरण में आ गए।

जैसी तेरी खुशी हो सब नाच तू नचा ले
हम राजी हैं उसी में जिसमें तेरी रजा हो
या यूं भी वाह-वाह वा यूं भी वाह-वाह है
या दिल से हमको ढहा दे प्यार प्यारे
या तेग खींच जालिम टुकड़े उड़ा हमारे।

सुख में तो सब कहते हैं हां भगवान् बड़ा अच्छा है, बड़ा अच्छा है। पर मुसीबत में, दुःख में हम भगवान् को गाली देते हैं। हमारा बेटा छीन लिया, यह छीन लिया, वह छीन लिया, हमारा सर्वनाश कर दिया। पर शरणागत ऐसा नहीं कहता है।

अब तक प्यार-प्यारे या दिल से हमको अब तक प्यार-प्यारे
या तो दिल से प्यार कर दे या जालिम तलवार खींचकर मेरे टुकड़े उड़ा दे।
चढ़ाना हो तो आसमानों में चढ़ा दे, मिटाना हो तो मिट्टी में मिला दे।

ऐसा व्यक्ति जो सर्वतोभावेन सब परिस्थितियों में भगवान् की चरण शरण में जाने को तैयार है उसके लिए भगवान् क्या नहीं देंगे? भगवान् उसकी कौन-सी कामना पूरी नहीं करेंगे। भगवान् उसको सर्वस्व देंगे।

प्रपन्न पारिजाताय—जो प्रपन्न है उसके लिए भगवान् कल्पवृक्ष हैं। गीता के प्रथम अध्याय में अर्जुन तर्क करता रहा। भगवान् हम क्यों लड़ें, हमारे गोत्रिय लोग हैं, हमारे वंश का नाश हो जाएगा, कुलधर्म नष्ट हो जाएगा, मर्यादा नष्ट हो जाएगी, स्त्रियां भ्रष्ट हो जाएंगी। वर्णसंकर संतानें पैदा होंगी, सारे कुल का नाश हो जाएगा। वो तो मूर्ख हैं, हम तो समझदार हैं। हम क्यों रक्त से सनी हुई

धरती पर राज्य करें? हम भिक्षा का अन्न खा लेंगे। अर्जुन बहुत बातें करता रहा। भगवान् मुस्कराते रहे और भगवान् ने एक का भी उत्तर नहीं दिया। क्यों? चेला बहुत सयाना हो गया है, तर्क करता है। करने दो। भगवान् तो उसका मजा ले रहे हैं। उसके तर्क का उत्तर क्या देना, विचित्र स्थिति है भगवान् बने हुए हैं सारथि।

अर्जुन है महारथी
सारथि बैठा है आगे गाड़ी चलाने के लिए
मालिक बैठा ऊंचा, पीछे युद्ध करने के लिए
सारथि का काम है कोच चलाने का,
सारथि का काम है साईस का।
साईस तो आगे है, और रईस तो
गाड़ी का मालिक बनकर पीछे बैठा है
हालत अजीब हो रही है इस दृश्य में
रईस तो रो रहा है और साईस हँस रहा है
अश्रुपूर्ण नेत्रों से अर्जुन कह रहा है—
'सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।।' 1/29 गीता

अर्जुन रो रहा है, मेरा अंग-अंग दर्द कर रहा है। मेरे शरीर में कंपकंपी हो रही है, रोंगटे खड़े हो गए, हाथ से गांडीव गिरा जा रहा है, मेरी त्वचा जल रही है, मैं खड़ा ही नहीं रह सकता, अब गिरा, अभी गिरा की स्थिति हो रही है, मेरा मन चक्कर खा रहा है। इस अवस्था में आजकल के किसी डॉ. को दिखाने से कहेंगे कि उसको पेरेलीसिस Paralyse's का Attack हो गया है, मुख सूख रहा है, Blood pressure High हो गया है? डॉ. तो यही निदान करेंगे। पर भगवान् उसकी स्थिति को जान रहे हैं इसलिए उसे किसी चिकित्सालय में नहीं भेजा कि जल्दी इलाज कराओ, इसको क्या हो गया? भगवान् उसकी स्थिति को जान रहे हैं। अतः भगवान् मुस्करा रहे हैं। पहले अर्जुन अपने दुःख से आंसू बहाता रहा, अपनी लाचारी, मजबूरी पर आंसू बहाता रहा और अपने मिथ्यातर्कों को मनवाने के लिए आंसू बहाता रहा तब भगवान् हँसते रहे। पर जब भगवान् के शरणागत होकर आंसू बहाये और कह दिया कि मैं तो अब आपकी चरण शरण में आ गया। अर्जुन ने कहा—भगवन्! कर्तव्य क्या है? अकर्तव्य क्या है? इसको मैं भूल ही गया। कृपणता का दोष मेरे में आ गया। उस कृपणता के दोष से मैं धर्म-अधर्म के वास्तविक अर्थ को भूल गया। इस समय मेरा क्या कर्तव्य है क्या अकर्तव्य है, इसमें मैं भ्रमित हो गया हूं। इसलिए भगवान् मैं कुछ नहीं जानता। मैं आपकी चरण

शरण में आया हूं। जो उचित हो मुझे शिक्षा देवें। महात्मा गांधी कहते हैं—जब-जब बड़ी समस्याएं आती हैं तो अर्जुन की इस वाणी में मैं रोकर भगवान् के सामने निवेदन करता हूं और भगवान् गीता के प्रकाश में कोई न कोई मार्ग लेकर मेरे सामने स्पष्ट प्रकट हो जाते हैं। ये ले ये मार्ग है और एक चमकता हुआ गीता का श्लोक मेरे सामने आ जाता है और मुझे मार्ग मिल जाता है। अर्जुन की शरणागति का श्लोक हम सबको हृदयंगम होना चाहिए। अर्जुन की शरणागति का श्लोक हमारे हृदय से ध्वनित होना चाहिए। अर्जुन की शरणागति के श्लोक में हम भगवान् को, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर को प्रत्यक्ष सामने करके उसके मुख से गीता सुनने के अधिकारी बन जाते हैं। अतः अर्जुन की शरणागति का श्लोक ऐसी कोई माता या सज्जन न हो जिसे स्मरण न हो और जिसके हृदय से प्रतिदिन एक बार ध्वनित न होवे। अर्जुन की शरणागति का श्लोक क्या है? अर्जुन कहता है—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

2/7 गीता

अर्जुन कहता है—भगवन्! कृपणता के दोष से मेरा जो वास्तविक स्वभाव है, वीर स्वभाव, क्षत्रिय स्वभाव या धर्मात्मा का जो स्वभाव है वह दब गया है और धर्मतत्त्व के विषय में समूढ़चित्त हुआ मैं आपसे हाथ जोड़कर पूछता हूं, जो कुछ मेरे लिए निश्चितरूप से कल्याणकारी हो अपने मुखारविंद से आदेश दे दीजिये। मैं आपका शिष्य हूं। ये नहीं कहा कि मैं आपका बंधु हूं, भ्राता हूं, यह भी नहीं कहा कि मैं आपका मित्र हूं। आप सारथि मैं तो इस रथ का महारथी हूं, मैं रथ का मालिक हूं, ये नहीं कहा कि मैं पाण्डवों की सेना का सर्वोपरि सेनापति हूं। वह तो यह भी कह सकता था कि आप तो मेरे साले हैं मैं आपका बहनोई हूं। कुछ नहीं, मैं तो आपका शिष्य हूं। मैं आपके प्रपन्न हूं, मैं आपके शरणागत हूं। इसलिए आप मुझे शिक्षा दीजिए। शिक्षा देकर मुझे आप बचाइये। मैं किस हालत में हूं, मुझे रास्ता सूझता नहीं, भगवन्! मुझे रास्ता बताइये। यह है शरणागति, यह है प्रपत्ति। इस प्रपत्ति के गुण से भगवान् सब कुछ खोलकर निछावर कर देते हैं। इसके बाद भगवान् अपना कुछ भी खजाना बाकी नहीं छोड़ते, सारा ही ज्ञान उड़ेल देते हैं। इस प्रपत्ति से पहले भगवान् ने एक शब्द का भी गीता उपदेश नहीं दिया। इस प्रपत्ति के बाद भगवान् ने उपदेश करना शुरू किया।

कार्पण्यदोषो

कृपणता का दोष। आजकल हिन्दी में कृपणता का अर्थ करते हैं कंजूस। तो कंजूसी के दोष से अर्जुन का स्वभाव दब गया? कौन-सी चीज की कंजूसी? इस शब्द को समझने से बड़ा आनन्द होगा। वह कृपणता क्या है? कृपण शब्द आया

है कृपा से। कृपा तो बड़ी बढ़िया चीज है। कृपा बढ़िया चीज है पर आप किसी पर करें तब। कृपा का अर्थ हुआ कृपालु या दयालु व्यक्ति। बड़ा अच्छा, बड़ा महान्। पर दयनीय व्यक्ति है तरस खाने लायक। इसकी स्थिति बड़ी दयनीय है तरस खाने लायक। तो कृपण व्यक्ति दयनीय होता है। उस पर तरस आता है—अरे, किस हालत में पड़ा है। वह दूसरों पर दया नहीं करता। कंजूस व्यक्ति किसी पर दया नहीं करता और उसी कारण से उसकी अवस्था दयनीय बन जाती है। तरस खाने लायक बन जाती है। क्यों तरस खाने लायक बन जाती है? गुरुद्वारा में प्रसाद बंटता है। प्रसाद बंटते हुए में एक आदमी को बहुत बढ़िया कड़ाही हलवा का प्रसाद मिला। उसको थोड़ा लोभ हो गया। उस हाथ को नीचे करके दूसरा हाथ बढ़ाया कि थोड़ा और ले लेवे। आगे हाथ किया तो डांट मिली कि और नहीं मिलेगा और पीछे हाथ किया तो उसको कुत्ता खा गया। यह है दयनीय अवस्था। हाय! तरस आता है। चाहता था डबल हलवा खाऊंगा पर अपना हिस्सा भी नहीं रहा।

एक सज्जन ने कहा हम मन्दिर बना रहे हैं, अयोध्या पहाड़ में बड़ा अच्छा मन्दिर बनेगा, महान् मन्दिर बनेगा। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का मन्दिर बनेगा। उनकी चरण धूलि से पवित्र हुई धरती में मन्दिर बनेगा। पर वह कहता है—जा-जा, हम कुछ नहीं देंगे। फिर कहा एक धर्मशाला बनाएंगे और एक वनवासी कल्याण के लिए छात्रावास बनाना है। देखो, मीनाक्षीपुरम् में इतना धर्मान्तरण हो गया है। धर्म जागरण के लिए दे दें। सबने कहा, कुछ तो दे दें। किसी काम के लिए दो, पर कुछ नहीं दिया। अब थोड़ी देर बाद आये डाकू। डाकुओं ने निकाला छुरा, गले को घोंटा। उसने कहा, अरे-अरे, वनवासी कल्याण आश्रम को दान करना है। अरे, अयोध्या पहाड़ के लिए दान करना है, विश्व हिन्दू परिषद को देना है। अब क्या देगा? अब तो धन भी छीनूंगा और तेरा प्राण भी छीनूंगा। तब अफसोस होता है—दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम। तब दयनीय स्थिति है। यह दयनीय है। यह कृपण है। यह ऐसा कार्पण्य का रूप है जिस पर दुनिया तरस खाये कि हाय! इसका कुछ नहीं हुआ। यह जीवन की बाजी हार गया। धन को बचाए रखना चाहता है पर धन बचता तो है नहीं। इस मुट्ठी में पहले पैसा था नहीं, अब पैसा चमक रहा है, कल पुनः हाथ खाली हो जाएगा। हाथ से पकड़े रहोगे पैसों को, न जाने पैसा पहले चला जाए या पैसे को पकड़ा हुआ हाथ ही पहले राख हो जाए। तेरे नोटों की गड्डियों में आग लगेगी या जिस हाथ से पकड़े रहोगे नोट, उसको ही आग लग जाएगी। कौन कह सकता है? अतः उसका सदुपयोग कर लो भाई। नहीं करोगे तो तेरी अवस्था कृपण की अवस्था है। तरस खाने लायक अवस्था है। अतः तरस आता है उन लोगों पर जिन्होंने धन का सदुपयोग नहीं किया। तरस आता है उन लोगों पर जिन्होंने तन का सदुपयोग नहीं किया। तुमने कहा हमारे शरीर पर

चांटा नहीं लगना चाहिए, कांटा नहीं चुभना चाहिए, धूल नहीं लगनी चाहिए। बचा ले कब तक बचाएगा? एक तमाचा काल का लगेगा तो राम नाम सत्य हो जाएगा। न देश की रक्षा के लिए खड़ा हुआ, न धर्म की रक्षा के लिए खड़ा हुआ, न जाति की रक्षा के लिए खड़ा हुआ, न परिवार की रक्षा के लिए खड़ा हुआ, न सम्मान की रक्षा के लिए खड़ा हुआ। और शरीर को बचाता रहा। तन धूल हो गया। तन का कृपण भी तरस खाने योग्य है और मन का कंजूस तो बहुत ही तरस खाने लायक है। कंजूस अन्य को देखता है किसी को देते हुए तो आंसू बहाने लग जाता है। अरे, तू आंसू क्यों बहा रहा है? अरे, तेरे हाथ से कुछ गिर गया है या दूसरे को देते देखकर तेरे कलेजे में कुछ हो गया है। दूसरों को देते देखकर उसके कलेजे में हड़कम्प मच जाता है।

मन की कंजूसी पर अमेरीका के स्कूल में मैंने एक प्रयोग किया।

कितने बच्चे हैं एक क्लास में जान लिया। 50 बच्चे हैं जानकर बच्चों को जो प्रिय है वह उपहार भी ले गया। एक कक्षा में पहुंचा। चपरासी को कहा तो वह सब उपहार एक ट्रे में सजाकर ले आया। फिर मैंने बच्चों से कहा, मैं भारत से आया हूं। आपके लिए कुछ उपहार लाया हूं। सब बच्चे उपहार पाकर खुश हुए। मैंने कुछ बच्चों से पूछा, आप कैसा अनुभव कर रहे हैं। उन्होंने कहा—Wonderful, Wonderful. You Indian very great. आप बड़े महान् हैं। फिर टिफिन का समय हो गया। बच्चे उछलते-कूदते, खेलते रहे। कोई लेमनचूस, चाकलेट खाते रहे—अन्य कक्षा के साथियों को दिखाते रहे। एक भारत से प्रो. ओबराय आए हैं, हमारे लिए ये-ये उपहार लाए हैं। वे बड़े अच्छे हैं, महान् हैं। प्रशंसा करते रहे। और अन्य कक्षा के बच्चों को ईर्ष्या हुई कि हमें नहीं मिला। ये कितने सौभाग्यशाली हैं। वे बड़े चाव से देखते रहे—उन्हें ईर्ष्या होती रही और जिन्हें दिया वे बड़े प्रसन्न थे। प्रशंसा करते रहे। पुनः अन्तिम कक्षा के समय उपस्थित होने पर बच्चों ने खड़े होकर ताली के साथ स्वागत किया, You Indian very great, wonderful. फिर प्रो. ओबराय ने बच्चों से एक निवेदन किया....यहां से थोड़ी ही दूर 4-5 किलोमीटर एक ग्राम है नीग्रो लोगों का। वे बड़े गरीब हैं। उनके यहां बच्चों का एक स्कूल है जिनमें बच्चों के पास सामान का बहुत अभाव है। उनके पास रबर नहीं है, पेन्सिल नहीं है। लेमनचूस, चाकलेट नहीं है, वे खरीदने में असमर्थ हैं। अतः जो बच्चे अपने प्राप्त किए हुए उपहारों में से कुछ सामग्री उनके लिए सहायतार्थ दे सकें, वे खड़े होकर अपना नाम लिखवा देवें। इस पर पूरी कक्षा में सन्नाटा छा गया। बच्चों को प्राप्त किए हुए उपहारों से ममता पैदा हो चुकी थी। वे एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। यदि विलियम दे तो राबर्ट दे....। तीसरी बार कहने पर 3 बच्चों ने एक-एक टॉफी, रबर, पेंसिल दान में लिखवाई। अन्त में मैंने

सभी बच्चों को आदेश दिया कि वे अपने सामान के डिब्बे हाथ में उठाकर एक पंक्ति में बंधकर मंच तक चले आवें तथा अपना अपना बक्स मेज पर रखते जावें। इससे खिले हुए चेहरे गंभीर हो गए। मुरझा गए....हम न अपने लिए बचा सके और न अन्य के लिए दे सके। मुफ्त में कमीने बन गए। तो मैंने कहा, बिल्कुल ठीक है। जो धन-सम्पत्ति हमें संसार में मिली हैं इनमें से क्या एक कौड़ी भी अपने साथ लेकर आए थे। एक कौड़ी तो साथ लेकर आए नहीं, क्या एक छदाम लेकर जा सकते हैं? एक छदाम लेकर जा नहीं सकते। यदि आप लेकर आए नहीं और लेकर जा सकते नहीं, तो धन किसका है? हम मोह से, झूठे मोह से, पाप-पुण्य मोह से मेरा-मेरा-मेरा करते रहते हैं। हम सब कमीने बन रहे हैं। भगवान् की वस्तु, भगवान् का धन, भगवान् का ऐश्वर्य, भगवान् की सम्पत्ति और भगवान् के जगत् के बन्धुओं की सहायता के लिए दे भी नहीं सकते और अपने साथ ले जा भी नहीं सकते। कमीने मुफ्त में बन रहे हैं। ये स्थिति हमारी है। इनके ऊपर क्या तरस नहीं आता। यह है कार्पण्य। यह है तरस खाने लायक कार्य। दूसरों की भलाई के लिए दिया नहीं, अपने लिए बचा नहीं सके, दोनों ओर से रह गए। जिस पर सारी दुनिया आंसू बहाए कि हाय! यह तो अभागा कहीं का नहीं रहा। तरस खाने लायक व्यक्ति कृपण होता है। इसलिए कहता है—'**कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः**'।

इस कृपणता के दोष से मेरा स्वभाव दब गया है। इसका भाव स्पष्ट है। कहा था भारत भर के एवं एशिया भर के बड़े-बड़े सम्राटों को कि हम धर्मात्मा हैं, राज्य हमारा था। राज्य पाण्डु का था। पाण्डु ने मरते-मरते कहा था कि भाई मैं जा रहा हूं। मेरा बेटा युधिष्ठिर छोटा है तुम थोड़े दिन के लिए संरक्षक बन जाना। फिर जब युधिष्ठिर महाराज बड़े हो जाएं तो इसका राजतिलक कर देना। धृतराष्ट्र के मन में पाप आ गया है। अक्ल का अंधा, नीति का अंधा, शरीर का अंधा, नैतिकता का अंधा, वह बिल्कुल अंधा हो गया है। जो राष्ट्र को धर-पकड़ कर बैठ जाता है। यह मेरा है, मेरा राष्ट्र है वह अंधा धृतराष्ट्र है। यानी जो राष्ट्र को धर-पकड़ कर बैठ जाए, हड़प लेवे, वह धृतराष्ट्र है। पाण्डव लोग हृतराष्ट्र हैं। राष्ट्र हरण हो गया है। जिनका राष्ट्र था उनका तो हरण हो गया है और जिनका राष्ट्र था ही नहीं वह धर-पकड़ कर बैठे हैं। इसलिए पाण्डवों ने, अर्जुन ने प्रार्थना की—देखो, राज्य हमारा था और हम हो गये हृतराष्ट्र और जिनका था नहीं वे हो गए धृतराष्ट्र। हमारी मदद करो, हमारे धार्मिक कार्य में सहयोग करें। सात अक्षौहिणी सेना इकट्ठी होकर आई थी उनकी मदद करने के लिए धर्म युद्ध में। पर धर्म युद्ध की वेला में उसके मन में एक विचित्र प्रकार का भाव आ गया मोह का जिससे उसका वीरभाव दब गया था। वह न विजय ही पा सका और न ही इधर कुछ पहले की मन की स्थिति में रह सका। इसलिए दोनों ओर से चला जा रहा है। दो-दो विशाल अक्षौहिणी

की सेना के लोग आए हैं। सबके सब कहेंगे कि तुमने हमें धोखा दिया है, तुमने पाप किया है। हम सब सेनाएं सजाकर इतनी-इतनी दूर से आए हैं, प्राणों का मोह छोड़कर तुम्हारे लिए। तुम्हारे धर्म के लिए प्राण गंवाने आए हैं, तुमने हमारे साथ इतना क्रूर मजाक किया है। अब सारे के सारे अर्जुन को निन्दित करेंगे। अर्जुन ही लांछित होगा। अर्जुन ही सबका शिकार बनेगा। इस तरह की उसकी स्थिति हो गई है। दुनिया को जीतने चला था, अब दुनिया की धिक्कार पाने लायक बन गया है। अर्जुन की स्थिति कृपणता की हो गई। 'कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः'।—इस कृपणता के दोष से मेरा जो क्षत्रियस्वभाव है, वह दब गया है। इसलिए मैं हाथ जोड़कर पूछता हूं धर्म के बारे में। मेरा चित्त विमूढ़ हो गया है। क्या कर्तव्य है, क्या अकर्तव्य है इसको मैं भूल गया हूं। इसलिए जो मेरे लिए कल्याणकारी है उसे निश्चित रूप से अपने मुखारविंद से कहें। मैं आपका शिष्य हूं। शिष्य कौन होता है? जो गुरु के आदेश को मानकर गुरु की आज्ञानुसार शिक्षा ग्रहण करता है। शिष्य कौन होता है? अनुशासन का पालक शिष्य होता है। अंग्रेजी में शब्द है Disciple. Disciple का मतलब है शिष्य। Disciple से शब्द बना है Discipline. जो Disciple होने की स्थिति है उसे Discipline कहते हैं। शिष्य होने की स्थिति को अनुशासन कहते हैं। शिष्य के समान आचरण करने वाला व्यक्ति अनुशासित व्यक्ति है। इसलिए मैं आपके अनुशासन को मानूंगा, मैं आपका शिष्य हूं। '**शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।**' शाधि के दो अर्थ हैं—आप मुझे शिक्षा देवें और आप मेरी रक्षा करें। और शिक्षा के द्वारा ही गुरु शिष्य की रक्षा करता है। इसलिए भगवान् आप मुझे शिक्षा देकर मेरी रक्षा करें। इस पर भगवान् ने क्या किया? 'प्रपन्नम्' माने क्या है? शरणागति। जब अर्जुन भगवान् के 'प्रपन्न' हो गया तो क्या किया? 'प्रपन्नपारिजाताय' प्रपन्नों के लिए तो भगवान् कल्पवृक्ष हैं। प्रपन्न को क्यों नहीं देंगे। प्रपन्न को तो सब कुछ दे देंगे। तब भगवान् कहते हैं—मेरे प्यारे! तू शरणागत हो गया है, तुमने अपने आपको मेरे चरणों में समर्पित कर दिया है। मैं तुम्हें क्या दूं? हे अर्जुन! मैं तुम्हें अपना हृदय ही निकाल कर दे रहा हूं।

'गीता मे हृदयं पार्थ, गीता मे शास्त्रमुत्तमम्।' पार्थ! गीता तो मेरा हृदय ही है, गीता तो मेरा उत्तम से उत्तम शास्त्र है। हृदय निकालकर मेरे प्यारे को दे रहा हूं जो मेरे शरणागत हो गया। जब कोई भगवान् के शरणागत होता है तो भगवान् अपना हृदय निकालकर दे देते हैं भाई। इसलिए पाण्डवों की पग-पग पर प्रभु ने रक्षा की है। इसलिए शरणागति।

'भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला'

भीष्म और द्रोण ये महाभारत रूपी नदी के दो तट हैं। भीष्म कौन? जो इच्छामृत्यु-प्राप्त हैं। जिनको इच्छामृत्यु का वरदान है, जब तेरी इच्छा हो मरना। और

किनकी इच्छा होती है मरने की? किसी की होती नहीं। और द्रोणाचार्य कौन हैं? द्रोणाचार्य और भी अलग चालाकी वाले हैं। शंकर भगवान् से तो शस्त्र विद्या पाई। उन्होंने कहा, जब तक आप शस्त्र धारण किए रहोगे तो कोई मार ही नहीं सकेगा। उसके बेटे ने तपस्या की तो चिरंजीवी बन गया। द्रोणाचार्य से भगवान् शंकर ने पूछा, आप क्या चाहते हो? तो द्रोणाचार्य ने कहा कि हम अपने बेटे से पहले न मरें। बेटा चिरंजीव और बेटे से पहले मरे नहीं! अपने कान से सुन लेवें कि बेटा मर गया तब हम प्राण छोड़ेंगे। तो चिरंजीवी मरे कैसे? चिरंजीवी को मरना ही नहीं है। इसलिए बेटे से पहले न मरने का वरदान है। बेटे से पहले मर नहीं सकते। इसलिए ये भी एक प्रकार से चिरंजीवी हो बैठे। शस्त्र धारण किए उन्हें कोई पराजित कर ही नहीं सकता। तो भीष्म और द्रोण ये दो तट हैं। 'जयद्रथजला' जयद्रथरूपी जल चल रहा है उस युद्ध की नदी में। महाभारतरूपी नदी में। जयद्रथ रूपी जल कैसा है? जयद्रथ को यह वरदान था कि जो तुम्हारे शीश को कटते हुए, गिरते हुए देख लेगा उसके अपने सिर के हजारों टुकड़े हो जाएंगे। इसलिए उसको कौन मारे? जो उसको मारेगा, उसके शीश को धरती पर गिरते देख लेगा उसके स्वयं के शीश के हजारों टुकड़े हो जाएंगे। तो जयद्रथरूपी जल उसमें भरा हुआ था। और 'कर्णेन वेलाकुला' कर्णरूपी भयंकर लहरें उसमें उठ रही थी। कर्ण के पास अर्जुन के नाश के लिए विशेष शक्ति सुरक्षित थी और बिना भगवान् की कृपा के अर्जुन उससे आमने-सामने के युद्ध में बच नहीं सकता था, कर्ण उसे परास्त कर सकता था। उसमें शल्यरूपी ग्राह चल रहे थे। और कृपाचार्यरूपी उसमें नदी का बहाव था, तूफान लेकर आए हुए थे। और कर्णरूपी उसमें बवण्डर बन गए थे। ऐसी जो नदी थी, महाभारतरूपी युद्ध की नदी को पाण्डव लोग पार कर गए। तो पाण्डव लोग उस रणनदी को पार कर गए—कैसे पार कर गए? कृष्ण भगवान् स्वयं केवट (मल्लाह) बने तभी उस नदी को पार कर सके, नहीं तो उनके लिए असम्भव था। इसलिए अपने प्रपन्नों के लिए भगवान् पारिजात बन जाते हैं। जो शरणागत है उसकी सब इच्छाएं पूरी करेंगे।

'प्रपन्नपारिजाताय तोत्त्रवेत्रैकपाणये'

हाथ में तोत्त्र है, वेत्र है। तोत्त्र क्या है? घोड़े की लगाम। वेत्र क्या है? घोड़े की चाबुक। चाबुक लगते ही घोड़े सरपट दौड़ने लगते हैं, हवा से बातें करने लगते हैं। खूब तेज दौड़ने लगते हैं। चाबुक है गति का प्रतीक, गति देता है चाबुक। लगाम क्या है? संयम का प्रतीक। जीवन में गति और संयम दोनों चाहिए। जीवन में गति चाहिए, लेकिन साथ में संयम चाहिए। विज्ञान ने मनुष्य को बहुत गति दे दी है पर दुर्भाग्य से संयम नहीं दिया। संयम धर्म दे सकता है, अध्यात्म दे सकता है, उसकी ओर से विज्ञान ने मुंह मोड़ लिया। इसलिए विज्ञान मानवता के सर्वनाश का कारण बन रहा है। चार दिन पहले एक Peace confrence हुई। उसमें हमें भी जाने

और बोलने का अवसर मिला। किस उपलक्ष में कान्फ्रेंस थी? 1945 में हिरोशिमा और नागासाकी पर Atom bomb गिराये गए। तो Atom bomb से वहां सर्वनाश हो गया। दो नगर बिल्कुल ध्वस्त हो गए। 10-10 मील दूर की धरती फटकर जलती हुई आकाश में उठी और कई मील तक उसका लावा आकाश में उठा और फिर गिरा और सारी भूमि को श्मशान में बदल दिया। लाखों-लाख सोये स्त्री-पुरुष, बच्चे चुटकी में नष्ट हो गए। उसकी स्मृति में 6-7 अगस्त को हर वर्ष लोग प्रार्थना करते हैं भगवान् ऐसी विभीषिका से बचाओ। क्यों हुआ? बड़ी विचित्र बात है। अमेरीका ने चेतावनी दी, अल्टीमेटम दिया। अन्तिम बार जापान को कह दिया, आप लोग आत्मसमर्पण करते हैं या नहीं, हार मानते हैं या नहीं। जापान के राजा ने कहा, हम लोग समर्पण करते हैं। किन्तु दिमाग में इतना बवण्डर था, इतनी उग्रता थी, अमेरीका के सेनापतियों के मन में इतना आक्रोश था कि उनके समर्पण वाले वाक्य को जो उन्होंने जापानी भाषा में कहा, उसको अनुवाद करके बताने वाले ने कहा उसके दो अर्थ निकलते थे। थोड़ा-सा उच्चारण के भेद से दूसरा अर्थ निकलता था। उसका दूसरा अर्थ निकलता था हम लोग आत्मसमर्पण पर, हथियार डालने पर विचार कर रहे हैं। उसने कहा, हम हथियार डाल रहे हैं। अनुवादक ने कहा हम हथियार डालने पर विचार कर रहे हैं। अमेरीका के सेनापति को क्रोध आ गया कि अभी तक ये विचार ही कर रहे हैं, उड़ा दो! संयम की कमी से, धीरज की कमी से, दुबारा पूछ लेते कि भई इसका मतलब क्या है? पूछ लेते कि कब तक, कितनी देर में हथियार डालने वाले हैं। तो शायद लाखों-लाख लोगों का विनाश बच जाता। पर उतावले व्यक्ति को संयम कहां है? उतावला सो बावला। इसलिए उतावले व्यक्ति ने दुबारा पूछने का धीरज नहीं रखा। संयम था नहीं। सैनिकों पर नहीं, नगरों पर बम गिरा दो। सोये हुए लोगों पर बम गिरा दिये। हिरोशिमा-नागासाकी बर्बाद हो गए।

विज्ञान ने गति बड़ी दे दी है, पर संयम बिल्कुल नहीं। संयम के अभाव के कारण विज्ञान मानवता के नाश का कारण बन रहा है। धरती पर चलने वाला व्यक्ति गिर जाए, थोड़ी चोट लगती है। स्कूटर वाले को अधिक, मोटरसाइकिल से और अधिक, कार से और अधिक, हवाई जहाज से गिरे तो और अधिक और रॉकेट से गिर जाए तो पता ही न चले कि कहां गिरा। उसके बचने का तो प्रश्न ही नहीं। गति बढ़ती जाती है पर संयम नहीं। जिसकी गाड़ी में केवल एक्सीलेटर ही एक्सीलेटर हैं। खूब दबाता है। दबाता है तो 200 मील की गति से गाड़ी उड़ती जाती है। पर उसमें ब्रेक है ही नहीं। तो उसका सर्वनाश तो उसके माथे पर लिखा ही हुआ है। उसका सर्वनाश होना ही है। उसको कोई बचा ही नहीं सकता। तो मानवता को सर्वनाश से बचाने के लिए भगवान् का संदेश है—चाबुक भी रखो और लगाम

भी रखो, गति भी रखो और संयम भी रखो। गति से तेज दौड़ेंगे और संयम से गलत रास्ते पर जाते हुए रोक भी सकोगे। मोड़ लेना है तो मोड़ ले सकोगे। शत्रु बायें गया है तो बायें जाओगे। लगाम से घोड़ों को काबू कर लोगे और जहां रोकना होगा वहां रोकेंगे और मोड़ना होगा वहां मोड़ेंगे, आहिस्ता गति करना है तो आहिस्ता गति करेंगे। लगाम नहीं तो बेलगाम व्यक्ति संसार में अनर्थ का कारण बनता है। इसलिए भगवान् के गीतारथ के चित्र में बड़ा भारी संदेश छिपा हुआ है—

'**तोत्त्रवेत्रैकपाणये ज्ञानमुद्राय कृष्णाय**'

ज्ञानमुद्रा में भगवान् हैं। ज्ञानमुद्रा क्या है? अंगुष्ठ से प्रथम अंगुली को छूते हुए बाकी तीन अंगुली को हाथ से दूर कर लेंगे इसका नाम ज्ञानमुद्रा है। इस मुद्रा में ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया जाता है। तीन क्या हैं—सत, रज और तम। प्रायः हाथ में यह जो तर्जनी है यह अंगुली जीव है और यह अंगूठा ब्रह्म है। जीव प्रायः तीन गुणों से मिला रहता है, इन्हीं गुणों के फंदे में फंसा रहता है। और तीनों गुणों से अलग होकर ब्रह्म से मिल जाता है। तब ब्रह्मज्ञान का उपदेश होता है। अतः तीन गुणों से पृथक् होकर ब्रह्मज्ञान पाया जा सकता है। इसलिए भगवान् इस मुद्रा में (ज्ञानमुद्रा में) उपदेश कर रहे हैं। हम ज्ञानस्वरूप ही हैं। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। अनन्त ज्ञान का नाम ही ब्रह्म है। भगवान् कहते हैं—

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। 4/38, गीता

हे अर्जुन! सारे त्रिभुवन में ज्ञान के समान और कोई पवित्र वस्तु नहीं है।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि।। 4/36, गीता

अरे अर्जुन! तू सब पापियों में सबसे बड़ा पापी क्यों न हो जाए तो भी मैं गारंटी से कहता हूं तू ज्ञान की नौका पर बैठकर सारे पापों से तर जाएगा। ज्ञान क्या है? सत्य की उपलब्धि, सत्य का दर्शन।

अभी माताजी भी अपने प्रवचन में बता रही थी कि भगवान् की कृपा तब बनती है जब मनुष्य सज्जन बन जाता है। जब मनुष्य बुराइयों को छोड़ देता है, सज्जन बन जाता है तब भगवान् की कृपा बनती है। तब भगवान् उसको अपना लेते हैं। इसी को धारण करके चलना चाहिए। पर भगवान् का एक चमत्कार और भी है। वह क्या है? रात को घटाटोप अंधेरा है। इतना अंधेरा इतना अंधेरा कि हाथ को हाथ सूझता नहीं। प्रत्यक्ष अपनी आंख के सामने एक फुट पर, आध फुट पर क्या है, कुछ नहीं सूझता है। वह अंधकार कहां तक फैला हुआ है? करोड़ों योजन तक वह अंधकार फैला हुआ है। उसकी कोई सीमा नहीं। आज जैसे भाद्रपद कृष्ण अष्टमी है तो खूब अंधेरा, भरपूर अंधेरा। इस अंधेरे में कुछ नहीं सूझता। फिर यदि आकाश

में बादल भी हों तो और भी अंधेरा हो जाता है। फिर थोड़ी बूंदाबांदी हो, वर्षा हो तो बिल्कुल ही कुछ भी नहीं सूझता। इस अंधेरे को कोई दूर करना चाहे, कोई मोमबत्ती लेकर जाए तो अंधेरा दूर होगा थोड़ा-सा, चाबुक लेकर मारें अंधेरा भागेगा नहीं, तलवार लेकर काटें, अंधेरा दूर होगा? नहीं। अंधेरे पर बम बरसाएं, अंधेरा दूर होगा? नहीं। झाड़ू-बुहारी करने से अंधेरा दूर होगा? नहीं। जब भी होगा प्रातःकाल एक हलकी-सी सुनहरी किरण इस अंधेरे को छू जाए तो छूते ही करोड़ों योजन का अंधेरा चुटकी में ही सिर पर पांव रखकर कहां चला जाता है, कोई नहीं जानता। सूर्य की एक किरण के छूने मात्र से। भले ही सूर्योदय से आधा घण्टा, पौन घण्टा पहले ही अंधेरा भाग जाता है। वह आ गया सूर्य उग गया। वैसे ही ज्ञान के आने के पहले से ही सब पाप-ताप, कोटि जन्मों के पाप-ताप अपनी गठरी बांध कर न जाने कहां चले जाते हैं, पता ही नहीं चलता। इतना भयानक, इतना दूर तक फैला हुआ काला अंधकार चुटकी बजाते चला गया। कैसे गया? प्रकाश से। जीवन भर का, 84 लाख योनियों के पाप का भण्डार ज्ञान के आते ही एक क्षण में दूर हो जाता है। इसलिए भगवान् कहते हैं—हे अर्जुन! तू पापियों में से सबसे बड़ा पापी क्यों न होवे तब भी तू ज्ञान की नौका में बैठकर सब पापों से मुक्त हो जाएगा। इसलिए भगवान् ज्ञान स्वरूप हैं और ज्ञान मुद्रा में उपदेश कर रहे हैं—

'ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः'

गीता रूपी अमृत का दोहन करने वाले जो भगवान् हैं, उसको हम नमस्कार करते हैं। गीता अमृत क्यों है? एक अमृत समुद्र मंथन से निकला। उस समुद्र मंथन से निकले हुए अमृत को जब देवों ने पीया तो सुख भोगा। पर देवता भी पुण्य क्षीण हो जाने पर इस मृत्युलोक में आते हैं। हम जानते हैं कि इन्द्र का कई बार पतन हुआ। हम जानते हैं राजा ययाति को इन्द्र बनाया गया और वे भी वहां से गिराये गए। कई ऐसे प्रसंग हम जानते हैं। और गीता में भगवान् ने कहा है—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। 9/21,गीता

वे जो पुण्य लोक के लोग हैं वे स्वर्गलोकों के विशाल सुख भोगने के बाद 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।' पुण्य क्षीण होने पर फिर मर्त्यलोक लौट आते हैं। इस प्रकार पुण्य कमाने वाले, पुण्य का फल भोगने वाले आवागमन के चक्र में लगे ही रहते हैं और उनका उद्धार पूरा नहीं होता। लेकिन भगवान् जिस अमृत को पिला रहे हैं गीतारूपी अमृत, उसको पीने के बाद भगवान् कहते हैं—हे अर्जुन! मुझे प्राप्त करने के बाद पुनर्जन्म नहीं होता है। इसलिए समुद्र मंथन से निकला हुआ जो अमृत था वह तो घटिया था, पीने के बाद मोक्ष नहीं हुआ। उसको पीने के बाद सुख हुआ। उसके बाद हजारों वर्षों तक सुख भोग लेने के बाद फिर उन्हें धरा-धाम

में आना ही पड़ता है। गीता रूपी अमृत पीने के बाद मोक्ष हो जाता है। आदमी मुक्त हो जाता है। इसलिए असली अमृत गीता ही है। इसलिए गीतारूपी अमृत के सामने अन्य सब अमृत तुच्छ हैं। इसलिए 'गीतामृतदुहे नमः' गीतारूपी अमृत का दोहन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण को हम नमस्कार करते हैं।

भगवान् वेदव्यास कहते हैं—

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय।।

एक बार सच्चे मन से भगवान् कृष्ण के चरणों में नमस्कार कर लेने से मनुष्य को दश अश्वमेध यज्ञ का फल तुरन्त मिल जाता है। दश सुमेधी पुण्य वाला भी पुण्य क्षीण होने पर संसार में पुनः जन्म लेता है। पर कृष्ण भगवान् को सच्चे हृदय से एक भी प्रणाम करने वाले को फिर संसार बंधन का मुख नहीं देखना पड़ता है। एक ही नमस्कार में मोक्ष पा जाता है।

मेरे एक मित्र हैं, सेठ हैं। वे नेपाल गए। अच्छे बढ़िया होटल में ठहरे। रोज 150-200 रुपया होटल के एक कमरे का देते रहे। टैक्सी में घूमते रहे। जो पैसा ले गए थे वह 10-15 दिन में समाप्त हो गया। अचानक एक दिन पॉकेट टटोलकर देखा तो घर जाने तक का पैसा नहीं बचा। वे बड़ी मुसीबत में पड़े। वे विमान से गये थे। आते वक्त जैसे-तैसे सीतामढ़ी तक पहुंचे। तीन दिन भूखे रहे। सौ-सौ रुपए का भोजन करने वाले को भूखा रहना पड़ा और बुरी हालत में सीतामढ़ी तक पहुंचे। वहां खोजते-खोजते एक परिचित को ढूंढ़ा। वह भी थोड़ा ही परिचित था। उससे इतना भर पैसा मांगा कि किसी तरह घर लौट सके। लौटने पर मैंने पूछा—सेठजी! कैसी रही आपकी यात्रा? उसने कहा, कुछ न पूछो। दुर्गति हो गई। पैसा सारा खर्च हो गया। वापस आने का पैसा ही नहीं बचा। भगवान् बचाये इस दुर्गति से। सारा मजा किरकिरा हो गया। शुरू में जितना सुख भोगा था, बाद में उतनी ही दुर्गति भोगनी पड़ी।

तो स्वर्ग लोक है भोग भूमि। वहां अपने अच्छे कर्मों का सुख भोग सकते हैं। कर्म भूमि नहीं है। कुछ कमा नहीं सकते। देवता हैं भोग योनि में। अच्छे कर्मों का सुख भोग रहे हैं। पशु भी है भोग योनि में, वे अपने बुरे कर्मों का दुःख भोग रहे हैं। मनुष्य है कर्म योनि में। कुछ पिछले कर्मों का सुख-दुःख भोगता भी है और साथ में नए कर्म कमा सकता है। वेदव्यास कहते हैं कि यह कर्म भूमि है। फल भूमि अलग है। वह स्वर्ग है। केवल फल ही फल है। आप कश्मीर जाएं वहां दस हजार रुपया ले जाएं। खूब पैसा खर्च करें, आनन्द मंगल करें तो खर्चा ही खर्चा कर सकते हैं कमा नहीं सकते। पर पुरुलिया में आप खर्चा भी कर सकते हैं और

कमा भी सकते हैं। कश्मीर में तो कमाई है ही नहीं, तो वहां पर पुण्य क्षीण होने पर धक्का खाकर लौटकर आना ही पड़ता है। तो स्वर्ग लोक में जाने के बाद पुण्य क्षीण होने पर मर्त्यलोक में आना पड़ता है।

एक अश्वमेध यज्ञ में कितना बवण्डर है, आप जानते हैं। सारे भूमण्डल में आपके घोड़े को कोई माई का लाल रोक नहीं सके, आपका घोड़ा सारी पृथ्वी को रौंदता हुआ निकल जाए, कोई रोकने वाला नहीं हो। सबके सब राजा नतमस्तक हो जाएं। सब देवताओं को आह्वान करें। सबके सब संत, महर्षि सब आएं। सब प्रसन्न हों। सब अपना-अपना भाग प्राप्त करें। सब देवताओं को आहुतियां मिले। ब्राह्मणों को, महात्माओं को ऋषियों को भोजन मिले। सब प्रसन्न होकर जाएं, तब एक यज्ञ का फल मिलेगा। ऐसे दस अश्वमेध यज्ञ का फल भगवान् श्रीकृष्ण को एक ही प्रणाम करने में मिल जाए। वेदव्यासजी कहते हैं यह भी बहुत कम है। दस अश्वमेध यज्ञ वाला भी पुण्य क्षीण हो जाने पर फिर संसार में आता ही है। पर कृष्ण भगवान् को सच्चे हृदय से एक प्रणाम करने वाले को फिर से पृथ्वी में आना-जाना नहीं पड़ता—

कृष्णव्रताः कृष्णमनुस्मरन्तो रात्रौ च कृष्णं पुनरुत्थिता ये।
ते कृष्णदेहाः प्रविशन्ति कृष्णमाज्यं यथा मन्त्रहुतं हुताशे।।

जिन्होंने भगवान् कृष्ण का व्रत ले लिया। कृष्ण-कृष्ण, गोविन्द-गोविन्द, नारायण। भगवान् का व्रत लिया है भगवान् का नाम जपेंगे। भगवान् का केवल नाम ही नहीं जपना चाहिए भाई। भगवान् ने जो पवित्र चरित्र किए हैं उसका भी अनुसरण करना चाहिए। भगवान् ने अपनी जाति की रक्षा के लिए क्या किया, राष्ट्र की रक्षा के लिए क्या किया? धर्म की रक्षा के लिए क्या किया? धर्मात्माओं की रक्षा के लिए क्या किया? भगवान् ने कैसा यज्ञमय जीवन जीया? जो निरन्तर कृष्ण का अनुस्मरण करते हैं। रात्रि को नींद उचट जाने पर उसके मुख से कृष्ण-कृष्ण, गोविन्द-गोविन्द निकले। नींद खुलने पर मुख से क्या निकलता है उससे पहचान लेना कि व्यक्ति कैसा है? रात्रि को भगवान् की सुन्दर कथा पढ़कर सोओगे, धर्म चर्चा करके सोओगे, दिनभर भगवान् का स्मरण करोगे, रात्रि को भी राम, कृष्ण, गोविन्द। दिनभर संसार के कुचक्रों की चर्चा करते रहोगे, राजनीति के छल-छद्म की चर्चा करते रहोगे। इसको कैसे ठगना चाहिए। इसको मारा जाए। इसने वोट नहीं दिया। यही धंधा चलता रहेगा। रात को सोते समय वैसे ही उपन्यास पढ़ोगे, फिल्म देखकर सोओगे, गन्दी पुस्तकों को पढ़कर सोओगे, मन में वैसे ही संस्कार होंगे और रात्रि में स्वप्न में वैसी ही चीजें आएगी। और नींद खुलेगी वही पुकारोगे। दिन में दुकान में कपड़ा मापने वाला व्यक्ति, व्यापारी दिनभर दुकान में ही रचा-पचा रहता है, दिनभर थक कर रात को घर जाता है, खा-पीकर सो जाता है। तो रात्रि को जो

सपना आता है वही दुकान का सपना आता है। स्वप्न में 6 रुपया मीटर, नहीं-नहीं 5 रु. मीटर। अच्छा ले ले साढ़े पांच रुपया मीटर। और सपने में अपनी ही धोती फाड़ लेता है। अपनी धोती, अपनी चद्दर फाड़ने वाला बेवकूफ कौन होगा? पर करता है क्योंकि दिमाग में वही रहता है। जिसके मन में, बुद्धि में भगवान् रचा-पचा है उसके भगवान् का ही नाम मुख से निकलता है। तो कृष्णव्रता दिनभर कृष्ण का अनुस्मरण करता है, रात्रि में जागकर भी कृष्ण का जाप करे, मुख से कृष्ण-कृष्ण जाप करता है। गुरु नानकदेव कहते हैं—भजो मन मेरे नारायण, गोविन्द माधव। वह साक्षात् कृष्ण ही बन जाता है। जो कृष्ण का व्रत ले लेते हैं, जो कृष्ण का स्मरण करते हैं, रात्रिकाल में कृष्ण को जपते हैं, नींद उचट जाने पर कृष्ण-कृष्ण जपते हैं। वह कृष्ण का ही शरीर है और वह अन्त में श्रीकृष्ण में ही लय हो जाता है। जैसे मंत्रों के साथ घी की आहुति अग्नि में डाली जाती है। तो मंत्रों के साथ घी की आहुति जब दी जाती है तब वह अग्नि रूप बन जाती है। घी को अग्नि में डालने पर घी अग्नि रूप ही हो गया। अर्थात् साक्षात् कृष्ण का ही शरीर बन जाता है। कृष्ण में ही लय हो जाते हैं। कैसे? जैसे मंत्र के साथ घी की आहुति दी जाती है तो घी अग्नि रूप ही बन जाता है। इसलिए कृष्ण का चिन्तन करने वाले, कृष्ण का नामस्मरण करने वाले, कृष्ण का व्रत लेने वाले, कृष्ण के समान आचरण करने वाले, कृष्ण के समान जीवन समर्पित करने वाले कृष्ण रूप बन जाते हैं।

भगवान् कृष्ण कुन्ती माता के पास पहुंचे। मां! देखो, जब पाण्डव लोग वन में थे तो आपने मुझे एक संदेश दिया कि तुम पाण्डवों के पास जा रहे हो। कौरव कुछ मानते ही नहीं। उन्होंने कह दिया कि सूई की नोक के बराबर भी धरती तुम्हें बिना युद्ध के देंगे ही नहीं। जब ऐसा कह दिया तो आपने मुझे एक संदेश दिया। क्या संदेश दिया—कि जिस काल के लिए क्षत्राणियां पुत्र पैदा करती हैं वह काल आ गया है। कुन्ती बड़ी वीर माता है। उसने अपने बच्चों को संदेश दिया। माता के कई रूप होते हैं।

माता का एक रूप है जननी। एक रूप है दीक्षाता। एक रूप है निर्माता, एक रूप है त्राता। जन्म देती है, जन्म देने के बाद प्रथम दीक्षा कौन देती है—माता देती है। गर्भ के बच्चों को भी संस्कार देती है और जन्मने के बाद भी प्रथम संस्कार मां की ही गोद में। मातृ भाषा, मां की गोदी में सीखता है। जो-जो लोरियां मां गाती है, उसकी अमिट छाप उसके मन पर पड़ती है। इसलिए वह बच्चे की दीक्षाता होती है, माता निर्माता भी होती है। माता निर्माण भी करती है। जीजाबाई ने शिवाजी को जन्म दिया। बचपन में लोरियां गाकर दीक्षा दी। फिर उसका निर्माण किया ठीक प्रकार से। संस्कार देकर निर्माण किया। फिर माता परित्राता भी बनती है, माता बच्चे का उद्धार भी करती है। मदालसा अपने बच्चों को कहती है—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसारमायापरिवर्जितोऽसि। हे बेटा! तू शुद्ध, बुद्ध, निरंजन है। संसार की माया से अपरिवर्तित। माता कहती है—बेटा! तुमने मुझे मां कहा है। माता कौन है? जो मेरा तारण कर दे वही तो मां है। जो मेरा उद्धार कर दे सो मां है। जो मेरा तारण कर दे सो मां है। तो त्राण कर दे वह मां है। जो त्राण न करे वह कैसी मां है? मां त्राण कैसे करती है? मां कहती है—बेटा! तुमने मेरी कोख से जन्म लिया है, मेरी गोदी में खेला है, मेरा तुमने अमृत रस पान किया है, स्तनपान किया है। याद रख, मुझे मां कहने के बाद तू अन्य किसी को मां न कहना। मुझे मां कहने के बाद अन्य किसी को मां कहने की जरूरत न पड़े। मां क्या कह रही है? सब स्त्रियां तो मां ही हैं। मां कहती है यह तो ठीक है। इस मानव जन्म में आकर इसी एक जन्म में तुझे मोक्ष पाना है। इसी जन्म में तुझे तर जाना है। मानव जन्म में यदि तुमने भगवान् को नहीं पाया, च्युत हो गए। 84 लाख योनि के बाद तुझे मानव का चोला मिला है, इस मानव के चोले में तुमने उद्धार नहीं पाया, इस मानव के चोले में तुमने मोक्ष नहीं पाया तो तुम गिरोगे। गिरकर तुम दूसरी घटिया योनियों में जाओगे, घटिया योनि में जाकर किसी कूकर-सूकर की योनियों में जाओगे। तुम किसी कूकरी को मां, सूकरी को मां कहोगे तो मां का नाम बदनाम हो जाएगा। बेटा! मेरा बेटा है तो प्रतिज्ञा कर इसी जन्म में तुझे मोक्ष पाना है। मैं त्राण करने के लिए आयी हूं। मैं तेरी मां हूं। मैं तेरा त्राण कर रही हूं। इसी जन्म में तू मुक्त हो जाए तब मेरा मातृत्व धन्य हो। यह है मां।

कुन्ती मां है। कुन्ती जननी है दीक्षाता है, निर्माता, परित्राता है। इस मां ने कोई भी कर्तव्य की च्युति नहीं की। यह मां के किसी कर्तव्य से पीछे नहीं रही। उसने भगवान् कृष्ण से कहा—मेरे ऊंचे कंधे वाले शेर जैसे जवान बेटों को कहना—जिस काल के लिए क्षत्राणियां पुत्र पैदा करती हैं वह काल आ गया है। अब क्षत्राणी के दूध को नहीं लजाना। पापी लोग सूई की नोक के बराबर धरती देने को तैयार नहीं हैं। वीर पुत्रो! खड़े हो जाओ। भगवान् कृष्ण ने कुन्ती मां से कहा—मां, मैंने तेरा संदेश पुत्रों को पहुंचा दिया। और तेरे वीर पुत्र खड़े हो गए। तेरे सबसे वीर शिरोमणि पुत्र अर्जुन के पांव लड़खड़ाने लगे, उसकी आंख से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और वह व्यामोहित हो गया, तब गीतारूपी अमृत पिलाकर खड़ा किया। तब महायुद्ध हुआ। महायुद्ध में सारे कौरव नामशेष हो गए हैं। उनका बीज नाश हो गया है। अब तेरे बेटे सारी धरती के निष्कंटक राज्य के स्वामी हो गये हैं। अतः मां मेरे लिए कुछ और आज्ञा हो तो बताओ। तब कुन्ती माता आंखों में अश्रु भर करके और आंचल फैलाकर कहती हैं—

विपदः सन्तु नः शाश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्।।

हे जगद् गुरो! कुन्ती भगवान् कृष्ण की बूआ है। माता के तुल्य है। भगवान् कृष्ण उसके सामने बच्चे हैं, लेकिन कुन्ती माता भगवान् कृष्ण को कहती है जगत् के गुरु। महाभारत प्रमाण है कि कुन्ती भगवान् कृष्ण को जगद्गुरु कहती है।

बच्चा बड़ा बन जाता है, ऊंचे पद पर चला जाता है तब भी माता-पिता उसे प्यार से घरेलू नाम से ही पुकारते हैं। चाहे वह प्रधानमंत्री पद पर हो या न्यायाधीश के पद पर हो। बड़ा आदमी बच्चों को तो बच्चा कहकर ही बुलाता है। तो कुन्ती बूआ भी कृष्ण को कान्हा, कृष्ण आदि नाम से बुला सकती है। पर कुन्ती भगवान् को जगद्गुरु कहती है। वह कहती है उसने जगद्गुरु को पहचान लिया है। क्या मांगती है? हे जगद्गुरु! हमें पग-पग पर मुसीबतें आती रहे। विपत्ति कब तक आती रहे? शाश्वतकाल तक विपत्तियां आती रहे। पग-पग पर मुसीबतें आती रहे। लोग हैरान हैं। पर कुन्ती कहती है एक मुसीबत बायें हों तो एक दायें, एक आगे तो एक पीछे हो, एक मुसीबत ऊपर हो जो सिर पर पड़ने को ही हो। यानी कदम-कदम पर मुसीबतें आये। लोग हैरान हैं कि देवताओं जैसे पुत्रों की मां होकर, (धर्मात्मा पुत्र, स्वयं धर्मपरायण, कर्तव्यपरायण है) भी इतना दुःख पाया कि हाथ से (सत्ता) राज्य छीन गया! जुए के झूठे पांसे फेंक-फेंक कर राज्य छीन लिया, लाक्षागृह में मां सहित पांचों पुत्रों को जलाने का दुष्कर्म किया गया, भीम को विष का लड्डू खिलाकर नदी में फेंक दिया गया। 12 वर्ष का वनवास, 13वें वर्ष का अज्ञातवास। उसमें भी, वनवास में भी जान से मारने के दुष्प्रयास किए गए। भरी राज्यसभा में पुत्रवधू की साड़ी खींची गई। अरे मां! तुमने क्या थोड़ा दुःख भोगा है। कदम-कदम पर दुःख भोग लिया है। दुःख भोगते-भोगते बूढ़ी हो गई है मां। फिर कहती है कदम-कदम पर दुःख भोगते ही जायें। कदम-कदम पर मुसीबतें ही आए। मां! तू कैसी मां है? मां क्यों विपत्ति मांगती है? भक्तों पर जब भी विपदा आएगी हे भगवान् आप तुरन्त दौड़े चले आओगे। जिससे आपका पुन-पुनः दर्शन हो सके भगवान्। मुसीबतें मुबारक हैं। मुसीबतें धन्य हैं। कम से कम मुसीबतों में आपका दर्शन तो हो जाता है। इसलिए हम मुसीबत मांगते हैं जिससे आपका पुन-पुनः दर्शन होता रहे। जिससे आपका दर्शन होता रहे। आपका दर्शन होने के बाद संसार का दर्शन नहीं करना पड़ता। मोक्ष अपने आप ही हो जाता है। मोक्ष हमसे कौन छीन सकता है। भगवान के दर्शन के बाद मोक्ष तो अपने आप ही हो जाता है। मोक्ष तो मुट्ठी में आ जाएगा यदि भगवान् का दर्शन हो जाए।

आज किसी से भी कहो—चलो, आज धर्मशाला में चलो, कृष्ण जयन्ती है। तो कहेगा, कुछ मिलेगा? प्रसाद मिलेगा। अरे, हमें प्रसाद यहीं पहुंचा देना या प्रसाद मुझे यहीं दे दो न, बाद में वहां बांट देना। लोग प्राप्ति पहले चाहते हैं और भक्ति बाद में चाहते हैं। केवल प्राप्ति ही चाहते हैं भक्ति चाहते ही नहीं। कोई

प्राप्ति के लिए भक्ति करना चाहते हैं। निष्काम भक्त, केवल भगवान् चाहिए और हमें कुछ नहीं चाहिए, केवल प्रभु का दर्शन चाहिए। ऐसी भक्त माता कुन्ती है। हम थोड़ा-सा करते हैं, जो ध्यावे फल पावे कष्ट मिटे तन का, सुख सम्पत्ति घर आवे। हम चाहते हैं हमने घण्टी बजाई, दीया दिखाया...हम चाहते हैं भगवान् को दीया दिखाया, अगरबत्ती दिखाई और खट से हमारे घर के अन्दर सोने-चांदी के छकड़े भरे हुए अपने आप पहुंच जाएं। जो भगवान् की भक्ति में लोभ-लालच रखता है उसकी भक्ति व्यभिचारिणी है। भक्ति को व्यापार मत बनाओ, भक्ति को व्यभिचार मत बनाओ। भक्ति को सदाचार में परिणत करो। भगवान् से दलाली मत करो। भगवान् से कुछ मत मांगो। भगवान् से भगवान् मांगो। इसके लिए जितनी बड़ी मुसीबत आए, ले लो। खाक पर चढ़ा दे या खाक पर सुला दे। राजी हैं उसी में जिसमें तेरी रजा है। यूं भी वाह-वाह है वा वूं भी वाह-वाह है। यह सच्चे भक्त का लक्षण है।

आदर्श माता कैसी है? पाण्डवों का राजतिलक हो गया जिसने तनिक भी इच्छा नहीं की। इतने दु:ख पाने के बाद, जीवन में भटकने के बाद, 13 वर्ष के दु:खदाई वनवास एवं अज्ञातवास के बाद अब मेरे पाण्डवों को राज्य मिला है। बुढ़ापे में अब मुझे भी राजमाता का गौरव मिला है। राजमाता के रूप में गौरव के यश को भोगूंगी?—नहीं। युधिष्ठिर महाराज का राजतिलक हुआ है और कुन्ती ने तुरन्त वानप्रस्थ ले लिया। मेरा कर्तव्य पूरा हो गया। मैं धन्य हूं। बच्चों की दीक्षाता, बच्चों की निर्माता, बच्चों की परित्राता। उनको लक्ष्य तक पहुंचा दिया है। अब मुझे कुछ मोह नहीं है। अब बिल्कुल यश-वैभव के मोह को त्यागकर, बिल्कुल शान्तभाव से वन को निकल गई। साथ में गांधारी एवं धृतराष्ट्र को लेकर। साथ में विदुरजी छोड़ने गए। यह है महान् माता। यह माता धन्य है।

जब शाहजी का स्वर्गवास हुआ। जीजाबाई शाहजी की धर्मपत्नी, सती होने लगी। शिवाजी रोने लगे। मां! तूमने मुझे जन्म दिया। तुमने लोरीयां गा-गा कर मुझे संस्कारित किया। तुमने कहा कि हिन्दू पदपादशाही की स्थापना करनी है। मां! जिस पौधे को तूने लगाया, सींचा है, पाला-पोसा है। उस पौधे को फलवान तो होने दो। तुम्हारे संरक्षण में पौधा फल जाए, मैं अपने लक्ष्य तक पहुंच जाऊं, इतना तो करो। मां को हाथ जोड़े। मां मान गई। मां अपना कर्तव्य पालन करती रही। और छत्रपति शिवाजी का राजतिलक हुआ। पांच-पांच बादशाह को पछाड़ कर—बीजापुर, गोलकुण्डा, औरंगजेब, कुछ देशी शक्तियां, कुछ विदेशी शक्तियां। उन्होंने स्वतंत्र हिन्दू राज्य स्थापित किया। राजतिलक हुआ। शहनाइयां बजी, सब ओर गाजे-बाजे हुए। राष्ट्रीय नाच हुए—भाट आए। सब राजाओं ने मस्तक झुकाया। मां ने कहा—बेटा! मेरा कार्य पूरा हो गया है। जिस कार्य के लिए जी रही थी, वह

कार्य पूरा हो गया है। अगली एकादशी पर मैं जाऊंगी। उसके 5-6 दिन बाद एकादशी आई और जीजाबाई ने शरीर छोड़ दिया। गंगाजल, तुलसीदल लिया और शरीर छोड़ दिया। यह है धन्य माता। यह है निर्मोही माता, कर्तव्यपरायण माता, निर्माता माता। यह है परित्राता माता। ऐसी धन्य माता की आवश्यकता इस देश को है। गांधारी की तरह अंधी माता नहीं चाहिए। आंख पर जानबूझकर पट्टी बांध ली है। सब पाप उसके सामने होते रहे और वह नहीं देखने का नाटक करती रही। धृतराष्ट्र तो था ही अंधा। गांधारी के आंखें थी। पतिव्रता के नाम पर जानबूझकर आंखों पर पट्टी बांध ली। क्यों? उसे बेटों के पाप नहीं दिखते? दीखते हैं। क्या उसे सुनाई नहीं देते? देते हैं। रोक नहीं सकती थी? रोक सकती थी। जब द्रौपदी का चीरहरण हो रहा है भरी सभा में, चीत्कार कर रही है। वहां की चीत्कार, उसकी आवाज द्वारिका के श्रीकृष्ण सुन रहे हैं। और उसकी सभा में एक किनारे में उसकी आवाज गांधारी नहीं सुनती? सारी की सारी सभा में शोर मच गया। सारे हस्तिनापुर में शोर मच गया। दुनिया रो उठी है। गांधारी वहां है। वह कड़क कर आ जाती राज्यसभा में। खबरदार! मेरी आंख के सामने मेरे जीते-जी, अपनी पुत्रवधू का अपमान कभी नहीं होने दूंगी। मैं आत्महत्या कर लूंगी यदि ऐसा कुछ हुआ। मैं सब पुत्रों को पुत्र नहीं मानूंगी। मेरा राज कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं बीच में खड़ी हो जाऊंगी, मैं उसको बचाऊंगी। गांधारी भी पुत्र के मोह में अंधी थी। दिखावे के लिए पट्टी थी कि मुझे कुछ नहीं दिख रहा है। एक नारी हमारे भी काल में थी उसे बेटे के कोई पाप दिखाई नहीं देते थे। इस गांधारी ने भगवान् श्रीकृष्ण को भी शाप दे दिया। जा! तूने मेरे सौ बेटे मरवा दिए। जा! तू भी एक शिकारी के हाथ, एक बहेलिए के हाथ से मारा जाएगा। भगवान् ने नमस्कार किया कि मां! तुझे बहुत धन्यवाद। मेरा लीला संवरण का समय आ गया है, तेरा वचन मेरे लिए वरदान बन जाएगा। मुझे शरीर छोड़कर जाना ही है। इसलिए भगवान् ने उसका बहुत धन्यवाद किया। भगवान् ने विनोद में उसकी परीक्षा लेने के लिए एक माया रची। क्या माया रची? भगवान् ने यह माया रची कि एकाएक मरुभूमि का दृश्य उपस्थित हो गया है। दूर-दूर तक कोई वृक्ष नहीं है। पानी का कोई जलाशय नहीं है। सूर्य तप रहा है। रेत उड़ रही है। गांधारी का कंठ सूख गया। गांधारी भूख-प्यास से व्याकुल हो गई। वह खोज रही है कुछ पीने-खाने को मिले। आकाश तप रहा है, गरम लू चल रही है। दूर-दूर तक वृक्ष नहीं। बहुत दूर उसे दिखाई दिया एक बेर का वृक्ष है। बेर में छोटे-छोटे फल लगे हैं। गांधारी दौड़कर वहां गई। कम से कम बेर खाकर प्राण तो बचाऊं। और जब हाथ बढ़ाया तो डाली ऊंची हो गई। उछल कर कोशिश की तो डाली ऊंची रह गई। इस श्मशान भूमि में कोई साजो-सामान, टेबल-चेयर या ऊंचा पत्थर भी नहीं था, जो रखे। उसने सोचा, श्मशान भूमि है। कोई देखता है नहीं। भूख बड़ी सता रही है। भूख से व्याकुल हो उठी। उसने अपने

बेटे की एक लाश को खींचा, उसको रखा। उस पर पांव रख कर डाली पकड़ने की कोशिश की। भगवान् की माया! फिर भी डाली ऊपर रह गई। तब उसे लगा इतने से काम नहीं बना। तब एक बेटे की लाश को और रखा, पांव रखकर डाली पकड़ने की कोशिश की। पर डाली फिर कुछ ऊंची, ऊपर रह गई। सौ बेटों की लाश रखकर—उस पर पांव रखकर वह बेर तोड़ने जा रही है, जब बेर तोड़ने जा रही है तब भगवान् ने हाथ पकड़ लिया। कहा—मां! तुम्हें अपने बेटों से बहुत प्रेम है। मां लज्जित हो गई। माता मोह में अंधी हो गई। कोई प्रेम-व्रेम कुछ नहीं है। अपने प्राण बचाने के लिए पापी बेटों को, जिनके लिए भगवान् कृष्ण को शाप दे रही है, उन्हीं की लाश नीचे रखकर, उन पर चढ़कर बेर खा रही है।

गांधारी और कुन्ती, दोनों ही मां के रूप हैं। आदर्श माता कुन्ती है। जाति के लिए, धर्म के लिए, राष्ट्र के लिए सब कुछ समर्पित करने वाली है। गांधारी दूसरे के राज्य को हड़प कर चुपचाप अपने बेटों की पीठ थपथपाने वाली है। बेटा चुप-चुप। बेटा! तू बहुत अच्छा बेटा है। Black Market का दस हजार कमाकर ले आया, मां को दे दिया। मां कहती है बड़ा अच्छा बेटा है। अरे मां तू आज उसका Black Market का पैसा खाती है और आज तू खुश हो रही है कि बेटे की ब्याह-शादी करनी है तो कर दे। कहती है बेटे की नौकरी तो 400 रुपये की है पर ऊपर से एक हजार रुपया और बना लेता है। ऊपर के एक हजार रुपये से खुश हो रही है। याद रखो मां जो बेटा हराम की कमाई करता है, पाप की कमाई करता है वह एक दिन तुम्हारी साड़ी उतारकर भागेगा। वह एक दिन बाप की तिजोरी खोलकर, पैसा निकाल कर चला जाएगा तब छाती पीटोगी। इसलिए कभी भी पाप को प्रश्रय नहीं देना चाहिए। मां का कर्तव्य है जिनको जना है उनको दीक्षा दे। उनको दीक्षा दी है तो उनका निर्माण करे। जिनका निर्माण किया है तो उनका त्राण करे। उनको ठीक मार्ग से चलाकर जीवन के लक्ष्य तक पहुंचाये। यह उसका धर्म है। जो त्राण नहीं कर सकती है वह मां कैसी? (जो अपने पितरों का उद्धार नहीं कर सके वह पुत्र कैसा है?)—

पुं नाम नरकात् त्रायते इति पुत्राः।

नरक से अपने पितरों का उद्धार नहीं करता वह पुत्र कैसा? तो जो आदर्श चरित्र है उसका बड़ा सुन्दर विश्लेषण महाभारत में मिलेगा। उस काल में ये बड़े भारी महापुरुष हुए। उन्होंने प्रतिज्ञा की आजन्म ब्रह्मचारी रहूंगा। अतः विवाह नहीं किया। अतः उन्हें पुत्र हुआ नहीं। पुत्र हुए बिना किसी के पिता तो बने नहीं। पर सारे राष्ट्र के पितामह बन गए। बिना पिता बने पितामह बनने वाले भीष्म सारे राष्ट्र के पितामह। वो बड़े महात्मा थे। वह भीष्म पितामह सारे राष्ट्र के पितामह हैं, पितर हैं। जब-जब पितरों को जल दिया जाता है तब सबसे पहले भीष्म

पितामह को जलांजलि देते हैं। अपने-अपने पितरों को लोग जल देते ही हैं। पितृ तर्पण में भीष्म पितामह को जलांजलि पहले देते हैं। वे सबके पितामह हैं जिन्होंने विवाह नहीं किया। जिनकी संतान नहीं हुई। वे सारे राष्ट्र के दादा हैं। उनको बिना जलांजलि दिए तुम्हारे बाप-दादा को मिलेगी नहीं। भीष्म पितामह (जो भगवान् कृष्ण से बड़े थे) 175 वर्ष की अवस्था में युद्ध कर रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण 125 वर्ष की अवस्था में गीतोपदेश कर रहे हैं। वो भीष्म पितामह कहते हैं—जिसका भाव यह है।

दादा अपने से 50 वर्ष छोटे पोते कृष्ण को प्यार से कान्हा, कृष्ण बुला सकता है। भगवान् आप सारे विश्व की योनि हैं और सारे विश्व की प्रलय भी हैं। सारा विश्व आप में ही टिका हुआ है। सबसे प्रारम्भ में आप ही सारी सृष्टि की रचना करते हैं। सारा विश्व आपके वश में है। उन्हीं ने गाया है—

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः।।

उन्होंने शरशय्या में पड़े हुए एक हजार नाम गाये हैं विष्णुसहस्रनाम के नाम से। बड़े अद्भुत महापुरुष थे। अब उनकी प्रतिज्ञा थी कि मैं नारी पर कभी हथियार नहीं उठाऊंगा, नारी पर प्रहार नहीं करूंगा। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने शिखण्डी को आगे करके उनके ऊपर प्रहार करवाया। एक बार उन्होंने बड़े वेग से पाण्डवों के ऊपर आक्रमण किया। दुर्योधन ने एक ताना मार दिया। दुर्योधन ने कहा—दादाजी! आप हमारे सेनापति हो, पर मन ही मन पाण्डवों से मिले हुए हो। इसलिए आप पाण्डवों को नहीं मारते। उन्होंने कहा—नीच, पापबुद्धि दुर्योधन! तेरे में अक्ल नहीं है! मैं क्षत्रिय धर्म में डटा हुआ हूं, लाखों-लाख सेना को काटता हूं। तू मेरे को ऐसा कह देता है। मैं क्षत्रिय धर्म को जानता हू और उसका पालन कर रहा हूं। दुर्योधन ने कहा—आप बेशक लाखों-लाख सेना काटिये न काटिये, पर हमारा वैर तो पांच पाण्डवों से है। यदि पाण्डव बने रहेंगे तो बाकी सेना तो धर्मादे की सेना है। हाथ जोड़कर इकट्ठी की हुई है, उनको मारने से क्या फायदा है। ये नहीं मरेंगे तो यह राज्य हमारा कैसे होगा। ये राज्य पर कब्जा कर लेंगे। असली वैर तो इनसे है। तब भीष्म पितामह ने कहा—अरे पापी! जिसका रक्षक भगवान् श्रीकृष्ण है उनको मारना कोई आसान कार्य है? अच्छा, तू बहुत कहता है तो कल मैं एक पाण्डव को मारने की प्रतिज्ञा करता हूं। जब ऐसा कह दिया तो पाण्डवों के दल में कोहराम मच गया कि हाय, भीष्म पितामह जिसकी प्रतिज्ञा को कोई टाल नहीं सकता। परशुराम भी जिसको प्रतिज्ञा से नहीं डिगा सके। त्रिभुवन में उनकी प्रतिज्ञा को मिटाने वाला कोई है नहीं। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं एक पाण्डव को मार दूंगा। द्रौपदी विलाप करने लगी। कुन्ती चिन्तित हो गई।

सारे पाण्डवों के शिविर में रोदन मच गया कि भीष्म पितामह ने प्रतिज्ञा की है। भगवान् ने द्रौपदी को कहा, तुम चिन्ता मत करो। हम व्यवस्था करेंगे। वह कैसे? भीष्म की प्रतिज्ञा टालने वाला कोई है ही नहीं। उन्होंने कहा चिन्ता मत करो, सो जाओ, हम व्यवस्था करेंगे। श्रीकृष्ण ने प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में द्रौपदी को जगाया और कहा, चलो मेरे साथ। उठा कर ले गए कि मेरे पीछे चलो। रास्ते में एक नदी आई। उसको कहा अपनी जूतियां उतारो, द्रौपदी ने जूतियां उतारी। भगवान् कृष्ण ने पीताम्बर में जूतियां लपेट ली। उसको कन्धे पर चढ़ाकर नदी पार कराई। छोटी-सी नदी को पार करने के बाद कहा पांव की आवाज मत करो, धीरे-धीरे चलो। और कौरवों का शिविर आ गया। भीष्म पितामह अपने शिविर में प्रातःकाल उठकर ब्रह्म चिन्तन में बैठे थे। उन्होंने कहा, मैं बाहर खड़ा हूं, तुम चुपचाप जाकर उनके चरणों में नमस्कार करो। द्रौपदी ने चुपचाप जाकर भीष्म पितामह को नमस्कार किया तो भीष्म पितामह के मुंह से निकल गया सौभाग्यवतीभव! आशीर्वाद मिल गया—सौभाग्यवतीभव! द्रौपदी अचानक चीत्कार करके बोली, दादाजी! आपका कौन-सा वचन सत्य होगा। कल आपने युद्ध भूमि में कह दिया कि मैं एक पाण्डव को मारूंगा और अभी आपने कह दिया सौभाग्यवतीभव! एक भी पाण्डव मर जाएगा तो मेरा सौभाग्य खण्डित हो जाएगा। आपने कल कहा एक पाण्डव को मारूंगा और अभी कहते हैं सौभाग्यवती भव। सौभाग्यवती भव का अर्थ एक भी पाण्डव मर नहीं सकता। एक भी पाण्डव मर गया तो मेरा सौभाग्य नहीं बचेगा। भीष्म ने हैरान होकर कहा, अरे! द्रौपदी तू है? इतने प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में तेरे को यहां कौन ले आया? दादा जी यह बात छोड़िये, बताइये आपका कौन-सा वचन सत्य है। मैंने तो सोचा मैंने पाण्डवों को मारने की प्रतिज्ञा की है, तो दुर्योधन की पत्नी नमस्कार करने आयी होगी अतः मैंने कह दिया। बता तेरे को लेकर कौन आया? छलिया कृष्ण कहां है? छोड़ो कृष्ण की बात, आप यह बताओ कि आपका कौन-सा वचन सत्य है। फिर उठकर जंगले से बाहर देखा तो पीताम्बर लहरा रहा है। तो दौड़े-दौड़े भीष्म गए और भगवान् कृष्ण के चरणों में नमस्कार किया। भगवान् ने आशीर्वाद देने के लिए ज्योंही हाथ उठाया तो उनके पीताम्बर में लिपटी हुई जूतियां गिर गई। तो भीष्म पितामह ने कहा, यह क्या? तब कृष्ण ने बताया नदी पार करते समय ये जूतियां पीताम्बर में लपेट ली। तब द्रौपदी ने पूछा, दादाजी...? भीष्म पितामह ने भगवान् से कहा, आपने मुझे धर्म संकट में डाल दिया। तब द्रौपदी ने कहा, धर्म संकट-वंकट बाद में होगा पहले यह बताओ आपका वचन कौन-सा सत्य होगा। भीष्म पितामह ने कहा, हे भगवान्! आप जिन भक्तों की जूतियां उठा लें उनको संसार में कौन मार सकता है। भगवान् अपने प्यारे भक्तों की जूतियां उठा लेते हैं। भीष्म ने कहा—अच्छा भगवान्, आपने मेरा एक वचन तुड़वाया है तो मैं आपके

दो वचन तुड़वाकर रहूंगा। यदि आज मैं भगवान् से शस्त्र न उठवा दूं तो मैं गंगापुत्र एवं शांतनु-पुत्र नहीं कहलाऊंगा। और भीष्म पितामह ने बहुत वेग से अर्जुन पर आक्रमण किया। उससे अर्जुन बहुत व्यथित हो गया और अर्जुन घबरा कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया। बिल्कुल परेशान हो गया, पसीना आ गया। अर्जुन बिल्कुल रथ से गिरा जा रहा था। भगवान् ने सोचा आज मेरे भक्त पर संकट आ गया। एक बार तो भगवान् चाबुक लेकर दौड़े हैं भीष्म पितामह पर। तो भीष्म ने कहा, हो गया वचन भंग! आपसे शस्त्र उठवा दिया। आज आपसे दो बार शस्त्र उठवाऊंगा। फिर भीष्म ने बड़े वेग से आक्रमण किया तब भगवान् रथ का चक्का उठाकर दौड़े हैं। तब भीष्म ने कहा—आप धन्य हैं भगवन्! आपने एक भक्त के प्राण की रक्षा कर ली और दूसरे भक्त की प्रण की रक्षा कर ली। मेरा प्रण था आपसे दो बार शस्त्र उठवाऊंगा। आपने दो बार शस्त्र उठा लिए। आपने अर्जुन के प्राण की रक्षा और मेरे प्रण की रक्षा कर ली। ऐसे भीष्म पितामह को शरशय्या पर पड़े हुए को कहा कि पाण्डवों को उपदेश देवें। शरीर से रक्त की धारायें बह रही हैं, तीर चुभे हुए हैं, सिर चक्कर खा रहा है, आंखों के सामने अंधेरा छाया हुआ है और इस समय आप कहते हैं मैं उपदेश करूं? भगवान्! दुनिया में आपसे बढ़कर कौन उपदेश कर सकता है। मेरा अन्तिम समय है। आपके मुंह से उपदेश सुनूं तो मेरा भी उद्धार हो जाए। पाण्डवों का भी उद्धार हो जाए। मैं किस तरह से उपदेश करूं? तब भगवान् ने कहा—नहीं, आप पितामह हैं। सबसे बड़े हैं। आपके मुखारविंद से मैं और पाण्डव उपदेश सुनना चाहते हैं। पर मैं उपदेश ऐसी स्थिति में कैसे करूं? तो भगवान् ने कहा, अच्छा! मैं आपको शक्ति देता हूं। तब भगवान् ने उन पर शक्तिपात किया है। जितने दिन तक आप प्राण नहीं छोड़ेंगे उत्तरायण तक, मकर संक्रान्ति के दिन जब सूर्योदय होगा तब तक आपके शरीर में एक भी व्रण, बाण की पीड़ा नहीं होगी। व्यथा नहीं होगी, भूख-प्यास नहीं सताएगी। कुछ कष्ट नहीं होगा। स्मृति पहले के समान उजागर होगी। आप बड़ा सुन्दर उपदेश करोगे। तब भीष्म पितामह ने महाभारत का जो हृदय है अनुशासन पर्व एवं शान्तिपर्व उसमें अद्भुत उपदेश किया है। किसकी शक्ति से उपदेश किया है भगवान् कृष्ण की शक्ति से।

युधिष्ठिर महाराज के राजसूय यज्ञ में विचार हुआ कि सबसे पहले किसकी पूजा की जाए? तो सबने कहा भगवान् श्रीकृष्ण की चरण पादुका की पूजा की जाए। तब शिशुपाल गाली बकने लगा कि वह क्या है, ग्वाला है आदि। बहुत गाली बकने लगा। शिशुपाल गाली बकता था मधुसूदन अंगुली पर गिनते जाते थे। वह बुरे वचन कहता था और वे उंगली पर गिनते जाते थे। जब सौ गाली पूरी हो गई तब भगवान् ने सुदर्शन चक्र से उसकी गर्दन काट दी। भगवान् ने संतुलन नहीं

खोया। शिशुपाल गाली बक रहा है, भगवान् मुसकरा रहे हैं। शिशुपाल को दण्ड दे दिया तो मुसकरा रहे हैं। शिशुपाल की हत्या हो गई तब भी भगवान् मुसकरा रहे हैं।

उसके बाद नकुल सोने के पात्र में जल लेकर आया। उनके चरण पखारे तब भी भगवान् मुस्करा रहे हैं। न निन्दा से व्यथित हुए हैं न हत्या से असंतुलित हुए हैं और न चरण पखारने पर प्रसन्नता से फूलकर कुप्पा हुए हैं। वे एकरस मुसकरा रहे हैं। जीवन में कभी भी, किसी भी परिस्थिति में जिन्होंने आंसू नहीं बहाया। सदैव मुसकराता हुआ भगवान् कृष्ण का मुखारविंद है। भगवान् कृष्ण का सदा मुसकराता हुआ चेहरा है। कौन मुसकरा सकता है? मुसकराने को कहते हैं प्रसादगुण। प्रसादगुण माने प्रसन्नता। प्रसादगुण कब आता है? जो राग-द्वेष से परे हो जाता है उसको प्रसाद कहते हैं। वो हर समय मुसकराता रहता है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। 2/64, गीता

जो राग-द्वेष से मुक्त होकर अपने आपको वश में करके कर्तव्यभाव से सब इन्द्रियों का व्यवहार कर रहा है वह प्रसन्नता को प्राप्त होता है। न कोई राग है और न द्वेष।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।। 2/65, गीता

प्रसन्नता में क्या होता है? सब दुःखों की आत्यन्तिक हानि हो जाएगी। प्रसन्नचेतस् व्यक्ति की बुद्धि सत्य में प्रतिष्ठित हो जाएगी। इसलिए भगवान कृष्ण मुसकान लिए हुए हैं।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति। 18/54, गीता

वे ब्रह्मभूत है। क्यों? क्योंकि प्रसन्नात्मा है। अभिमन्यु की मृत्यु पर सारी मानवता रोयी। पर भगवान् ने एक बूंद आंसू नहीं बहाया। भगवान् के मुख पर मुसकान है। वे सत्य को देख रहे हैं। सत्य को देखने वाले को पता है आत्मा तो कभी मरती नहीं है। शरीरों के मरने के लिए कौन आंसू बहाता है। इसलिए सत्य का द्रष्टा मुसकराता रहता है। इसलिए ब्रह्मभूतः—ब्रह्मभूत कौन है? जो सदा प्रसन्न रहता है। न शोचति—किसी चीज का शोक नहीं करता है। न कांक्षति—क्यों नहीं शोक करता है? किसी चीज की चाह ही नहीं है, किसी चीज की आकांक्षा ही नहीं है। किसी चीज की आकांक्षा करे, कामना करे और पूरी न हो तो हम हाय-हाय करते हैं। हाय काम, हाय। उनको कोई आकांक्षा ही नहीं है, कामना ही नहीं है। केवल विश्वकल्याण के लिए समर्पित हैं। कर्तव्य पालन करते हुए कर्तव्यपरायण धर्मात्माओं की सहायता के लिए जिन्होंने सब कुछ, सारा जीवन समर्पित कर दिया

है। स्वयं जिनके एक इशारे पर बड़े-बड़े साम्राज्य गिरते एवं उठते हैं। जिनके एक तिनका तोड़ने से जंघा चीर दी जाती है जरासंध की। जिसके एक इशारे से जंघा टूट जाती है दुर्योधन की। सब इशारे होते हैं केवल। बिना रथ पर हथियार उठाए ही सारी 11 अक्षौहिणी सेना पर विजय दिलाते हैं और स्वयं एक क्षण के लिए भी राजतिलक नहीं लेते। बाद में लोग कहते हैं महाराज! आप राजतिलक ले लो। तब वे कहते हैं हमारे पूर्वज राजा ययाति ने कहा था यदुवंशी राज्य नहीं करेंगे। ययाति ने चार बेटों से उनकी जवानी मांगी थी। तो पुरु ने जवानी दी थी। यदु ने, तुरु ने, तर्सु ने जवानी नहीं दी। तब महाराज ययाति ने कहा—यदु! तुम्हारे वंशज राज्य नहीं करेंगे। अतः भगवान् कहते हैं और महाराज ययाति ने कह दिया था यदुवंशी राज्य नहीं करेंगे। तो हम राज्य नहीं करेंगे। तो भगवान् मुसकरा कर टाल देते थे। इस प्रकार सर्वतोभावेन—विश्व मंगल के लिए, लोक मंगल के लिए भगवान् का जीवन था।

ऐसा भगवान् का चरित्र है। अभी भगवान् कृष्ण आनन्दकंद के चरणों में अपने हृदय की हरी-भरी क्यारी के सारे के सारे भाव पुष्प अत्यन्त श्रद्धा एवं आदर के साथ समर्पित करके उनके चरणों में अपना तन-मन-धन प्राण चढ़ाकर प्रार्थना करते हैं, हे श्रीकृष्ण! आपके यज्ञमय जीवन के अनुसार जीवन जीयें। आपके संदेश के अनुसार कर्म संकुल और उत्ताप श्रेष्ठ कर्ममय जीवन जीयें। कर्म को धर्म से जोड़ें। और जीवन में कर्मों के फल की वांछा त्याग देवें और कर्तापन का अहंकार भी अगरबत्ती जलाकर फूंक डाले। अन्त में आपके चरणों में विश्राम पाएं। अन्त समय में आपका पावन नाम हमारे मुखारविंद पर हो। आपकी मनोहर झांकी हमारे सामने हो। हमारी आत्मा आपकी ही महान् आत्मा में विश्राम पाये।

ॐ शान्ति-शान्ति-शान्ति।



सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी।
दस्त तेरे बिकानी बदनामी भी सहूंगी मैं।।
देव पूजा ठानी तजि कलमा कुरानी।
नमाजहू भुलानी तेरे गुन न तजौंगी मैं।।
सांवला सलोना सिरताज सिर कुल्लेदार।
तेरे नेह दाघ में निदाघ हवै दहूंगी मैं।।
नंद के कुमार कुरबान तेरी सूरत पर।
हो तो मुगलानी हिन्दुआनी हवै रहूंगी मैं।।

—ताज बेगम



जन्माष्टमी : द्वितीय प्रवचन

आज जन्माष्टमी का परम पावन पर्व है।

आज से 5,135 वर्ष पूर्व मथुरा में कंस के कारागार में एक महान् ज्योति का प्राकट्य हुआ। संसार में लगभग 6 अरब लोग हैं। उन सबसे पूछें जेल में कितनों का जन्म होता है? उन सबसे पूछो जेल में कितनों का जन्म हुआ? उँगली में गिनने योग्य लोगों का जन्म जेल में हुआ। जन्म के समय मां-बाप के हाथों में हथकड़ी और पांवों में डण्डाबेड़ी लगी थी। आपको लगेगा शायद उँगली में गिनने योग्य व्यक्ति! कितने ऐसे थे जिनके जन्म के पहले मारने के लिए वचन हो चुका था? जन्मते ही मार दिया जाए यह माता-पिता एवं हत्यारे के बीच तय हो चुका था। कितने ऐसे थे और कितने ऐसे हैं जिनके सात भाई-बहिन को जन्मते ही मार डाला जा चुका था? कितने ऐसे हैं जिनके जन्म पर किसी ने बधाई का एक शब्द नहीं कहा। बधावा नहीं गाया था? उस शुभ घड़ी में किसी ने मां-बाप को बधाई नहीं दी। और कितने ऐसे हैं जिनको जन्मते ही मां की छाती से खींचकर अलग कर दिया गया, गांव में कहीं जाकर छिपा दिया गया, कितने ऐसे हैं छठी के दिन पूतना नाम की राक्षसी स्तनों में विष लगाकर, विष पिलाने के लिए पहुंची, कितने ऐसे हैं जिसको मारने के लिए एक के बाद एक राक्षसों की पंक्ति को बार-बार भेजा गया था—अघासुर, मघासुर, शक्तासुर, लम्बासुर बार-बार ऐसे राक्षसों को भेजकर बार-बार उसको जान से मारने का उपाय करता रहता था, कौन ऐसे हैं जिनको 12 वर्ष की बाल्यावस्था में बुलाया गया राजदरबार में दंगल के लिए। बड़े-बड़े मस्त हाथी शराब पिलाकर छोड़ दिए गए, ऐसे मल्ल जो 10-10 हजार हाथियों का बल रखते थे। उन मल्लों की मल्लशाला में भेजा गया शक्ति परीक्षा के लिए? कितने ऐसे हैं जो अपने पालक माता-पिता से, मित्र मण्डली से, गोप बालकों एवं गोप बालिकाओं से बिछुड़े। जीवन के 125 वर्ष तक पुनः मुख नहीं देखा। कैसे-कैसे विचित्र संकट, कैसी-कैसी आपदाएं इन महापुरुष के जीवन में आई। आज का कोई बढ़िया लेखक जीवनी लिखता है, उसके जीवन में ऐसी दो-चार घटनाएं घटी होती तो गला फाड़-फाड़ कर दुनिया को बताता—मेरे से अधिक अभागा व्यक्ति कोई नहीं। मैं दुनिया का सबसे अधिक अभागा व्यक्ति हूं। जो जन्मते

ही मां-बाप से अलग हुआ। बधाई किसी ने दी नहीं मां-बाप को। 12 वर्ष तक छिपाकर दूसरे गांव में रखा गया। वहां भी मारने के षड्‌यंत्र चलते रहे। वह कहेगा मैं सचमुच दुनिया का सबसे अभागा व्यक्ति हूं। मेरे जन्म पर किसी ने बधाई नहीं दी। मेरी मौत के सौदे पहले से तय हो चुके थे। अपनी आत्मकथा लिखने वाला कोई भी लेखक ऐसा लिखता। किन्तु भगवान् कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द, भगवान् वासुदेव, नारायण, अन्तर्यामी परमेश्वर, स्थितप्रज्ञ पुरुष, ज्योतिपुरुष ऐसे महान् पुरुष थे। कितने भयंकर संकटों की शृंखलाएं जीवनभर आपदाओं की वह्नि (अग्नि) ज्वालाओं में पड़कर भी उन्होंने जीवन में एक भी आंसू नहीं बहाया, कभी हाय-हाय नहीं की। कभी अपने पर तरस नहीं खाया। और अपने पर तरस दिलवाने के लिए, दुनिया को आकर्षित करने के लिए कोई करुणा की वाणी में नहीं कहा। आत्म ग्लानि, आत्म निन्दा, अपनी दयनीय अवस्था पर दया करने, अपने को तुच्छ, घटिया और अभागा कहना कहीं भी एक शब्द भी भगवान् कृष्ण के मुंह से नहीं निकला। जीवनभर मुस्कराते रहे। मन्द-मन्द मुसकान मुखारविंद पर रही। जैसे फूल होता है। फूल चारो ओर से शूलों से घिरा होता है। दायें-बायें, ऊपर-नीचे, आगे-पीछे दसों दिशा में शूल से घिरा होता है। और प्रत्येक शूल बड़ा तीखा है, पैना है और प्रत्येक शूल कहता है तनिक हवा का झोंका आएगा हम तेरा कलेजा चीर डालेंगे। सचमुच गुलाब जैसे फूल का कलेजा चीरना शूल के लिए बिल्कुल सम्भव है। फूल जीवन की प्रथम घड़ी से लेकर अन्तिम घड़ी तक मुसकराता रहता है। चारो ओर शूल तने हैं। शूलों के मध्य में फूल मुस्कराता रहता है। फूल कहता है तुम शूल हो। तुम मानव के हृदय को सालने के लिए, शूलने के लिए, चीरने के लिए पैदा हुए। तुम अपना कर्म करो। मैं तो फूल हूं, मैं खिलने के लिए, मुसकराने के लिए, अपनी सुगन्धि बांटने के लिए पैदा हुआ हूं। जीवनभर अपना कार्य करूंगा। तो शूलों से घिरा हुआ फूल, शूलों के मध्य में जिस प्रकार मुसकराता है इस प्रकार से हजारों-हजार आपदाओं के बीच भगवान् जीवन भर मुसकराते रहे। यदि किसी को भगवान् कृष्ण की पूजा करनी है, स्तुति गानी है, प्रशंसा करनी है, जिसको भगवान् कृष्ण अतिप्रिय हैं, इष्ट देवता हैं उसको जीवन में व्रत लेना चाहिए कि हजारों-लाखों शूलों के बीच में मुस्कराता रहूंगा। मैं मन की मलिनता, आत्मग्लानि का शिकार कभी नहीं होऊंगा। यदि मैं कृष्ण का भक्त हूं तो मेरा धर्म है भगवान् कृष्ण के समान जीऊंगा।

सुमन का अर्थ है अच्छे मन वाला। जिसके मन में किसी के प्रति राग-द्वेष नहीं है। जिसके मन में किसी के प्रति कपट कूट चरित्र नहीं है, जिसके मन में किसी के प्रति वैर भाव नहीं है। जो विश्व मंगल के लिए जीता है। जिसके मन में ओछा भाव, कमीना भाव, स्वार्थ का भाव कुछ नहीं है। जो सुमन है, अच्छे मन

वाला है, वह सदा मुस्कराता है। भगवान् कृष्ण का मुस्कराता हुआ मुखमण्डल यह उनके जीवन का सबसे महान् संदेश है। भगवान् कृष्ण के मुख पर मधुर दिव्य मुस्कान उनके जीवन का महानतम संदेश है। यह जिसने नहीं सीखा है उसकी कृष्ण भक्ति वृथा है। हजार मुसीबतें आए पर कृष्णभक्त हमेशा मुस्कराता रहता है। हजारों संकट आएं, हजारों आपदाएं आएं हम कृष्णभक्त मुस्करायेंगे। कृष्ण भक्त आपदाओं पर मुस्कराएंगे, आपदाओं को गले लगाएंगे, आपदाएं हार जाएंगी पर उन्हें पराभूत नहीं कर सकेंगी।

शूल—शूल सबके हृदय को शूलता है। शूल की कुछ प्रतिष्ठा नहीं है। शूल का लोग स्पर्श करने से भी भय खाते हैं। पर फूल को लोग देवता के चरण में चढ़ाते हैं। यदि हमारे जीवन में एक ही काम है जहां मिले वहां सबको शूलते रहे, दूसरों की निन्दा, चुगली करते रहें, जहां मिले दो को लड़ाते रहें, दूसरों के घर फोड़ते रहें, छिद्र खोजते रहें तो हम शूल हैं। शूल को तोड़कर फेंक देते हैं। शूल के साथ किसी की रहने की इच्छा नहीं होती। यदि हम फूल हैं, जीवन में मुसकराते हैं और अपने जीवन के चारित्र्य और पावित्र्य की सुगंधि फैलाते रहे, जो आए उसमें चरित्र एवं पवित्र की सुगंधि फैलाते रहे, मुक्त हस्त से बांटेंगे, बिना शुल्क के, बिना पैसे के बांटेंगे। और बिना किसी भेदभाव के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ग्रामवासी, वनवासी को बिना भेद माने सबको मधुर मुसकान बांटेंगे। जो अपने मुख पर सदैव मुसकान रखते हैं चारित्र्य एवं पावित्र्य की सुगंधि मुक्त हस्त से बांटते हैं तो हम मानवता की फुलवारी के फूल हैं। तब हम देवता के चरण पर नहीं देवता के मस्तक पर चढ़ाने योग्य बन जाएंगे। देवता भी आदर के साथ अपने शीश पर चढ़ा लेंगे। भगवान् कृष्ण मानवता की फुलवारी के ऐसे अन्यतम पावन फूल हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में एक सिद्धान्त कहा—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। 18/54,गीता

जो ब्रह्मभूत है, जो साक्षात् ब्रह्म रूप है, उसकी पहचान, कसौटी क्या है? उसकी कसौटी है, पहचान है कि वह प्रसन्न है। 18 अक्षौहिणी सेना धरती में समा गई। योद्धा, महायोद्धा, रथी-महारथी मारे गए। जब अभिमन्यु की मृत्यु हुई तो सारे पाण्डव दल की आंखें गीली हो गई। मातायें विलाप करने लगी, उनको देखकर कौरव भी विलाप करने लगे। दसों दिशायें रो उठी। पर भगवान् कृष्ण मुस्कराते रहे। रोना कैसे होता है? रोना होता है मोह से, अज्ञान से। जो मोह और अज्ञान से मुक्त है वह रोये क्यों? इसलिए उस दिन भी भगवान् मुस्करा रहे हैं। सबको यथोचित ज्ञान दे रहे हैं। विवेक दे रहे हैं और उनको दुःख सागर से पार जाने का मार्ग बता रहे हैं। जो साक्षात् ब्रह्म हैं। जिन्होंने 5,150 वर्ष पूर्व जन्म लिया। वे साक्षात् ब्रह्मभूत हो गए। क्यों? प्रसन्नात्मा का माप क्या है, प्रसन्नात्मा की कसौटी

क्या है, प्रसन्नात्मा होता क्या है? जो सदा प्रसन्न है उसको जांचने का हमारे पास क्या साधन है? तब कहते हैं 'न शोचति' शोक नहीं करता, बड़ी से बड़ी विपत्ति आ जाए तो वह रोएगा नहीं। हाय-हाय नहीं करेगा, परिस्थिति की शिकायत करेगा नहीं। वह उस परिस्थिति को अपनी अग्निपरीक्षा समझेगा और मुस्कराते हुए उस अग्निपरीक्षा से पार हो जाने के लिए उद्यत हो जाएगा।

स्वामी रामतीर्थ अपने एक गीत में कहते हैं—

कुंदन के हम बने हैं, जब चाहे तू जला ले
वावर न हो तो हमको ले आज आजमा ले।
जैसी तेरी खुशी है, नाच तू नचा ले।
राजी हूं मैं उसी में, जिसमें तेरी रजा है।
यां यूं भी वाह वाह है और यूं भी वाह वाह है।

हम तो कुंदन के बने हैं जी। हम खोटी धातु के टुकड़े नहीं है जी जो डर जाएंगे आग से। हम डरने वाले नहीं है जब तेरी इच्छा हो जलाकर देख ले। यदि तेरी आग से डर जाएं, आग की लपट देखकर भयभीत हो जाएं, यमराज का दण्ड देखकर डर जाएं, काल का छुरा देखकर डर जाएं, विपत्तियां देखकर डर जाएं, शूल देखकर डर जाएं तो समझना घटिया धातु का कोई बना हुआ है। पीली धातु का टुकड़ा है, कुंदन नहीं है। असली सोना नहीं है—

कुंदन के हम बने हैं जब चाहे तू जला ले
वावर न हो तो हमको ले आज आजमा ले।

यदि विश्वास न हो तो भगवान् आज, अभी इसी क्षण आजमा ले। चन्द मुसीबतें ले आ, सब मुसीबतें ले आ, कहर ले आ, इसी समय चारों ओर से विपत्तियां टूट पड़े, कयामत आ जाए, यदि कांप जाएं तो गटर में फेंक देना, नाली में फेंक दो, थूक देने लायक। यदि सच्चे हैं तो हम डरेंगे नहीं।

कुंदन के हम बने हैं जब चाहे तू जला ले
वावर न हो तो हमको ले आज आजमा ले।
जैसी तेरी खुशी हो सब नाच तू नचा ले।
राजी हूं मैं उसी में, जिसमें तेरी रजा है।

फिर स्वामी रामतीर्थ भगवान् से पुकार कर कहते हैं—

या दिल से हमको कर प्यार प्यारे या तेग खींच जालिम टुकड़े उड़ा हमारे।

हे भगवान्! या तो हृदय से हमको प्यार कर ले या तो हाथ में तलवार लेकर हमारे टुकड़े उड़ा दो।

आशिक मगर कलन्दर यूं पुकारे
राजी हूं मैं उसी में, जिसमें तेरी रजा है
यां यूं भी वाह वाह है और यूं भी वाह वाह है।
या अर्श पर चढ़ा दे या खाक में मिला दे
आसमान में चढ़ा दे भगवान् या मिट्टी में मिला दे
राजी हूं मैं उसी में, जिसमें तेरी रजा है
यां यूं भी वाह वाह और यूं भी वाह वाह है।

ब्रह्मभूत व्यक्ति जो है वह प्रसन्नात्मा है और प्रसन्नात्मा की कसौटी क्या है? 'न शोचति' वह कभी शोक नहीं करता। बड़ी से बड़ी मुसीबतें आ जाए वह शोक नहीं करेगा क्योंकि उसकी दृष्टि खिलौनों पर नहीं है, उसकी दृष्टि नाम-रूप पर नहीं है। उसकी दृष्टि नश्वर वस्तुओं पर नहीं है। वह तो अमर वस्तु को देखता है और अमर वस्तु पर कभी संकट पड़ा ही नहीं।

रोते कौन हैं? अज्ञानी। रोते कौन हैं? मोही। रोते कौन हैं? तुच्छ, लोभी, स्वार्थी रोते हैं, तत्त्वदर्शी कभी नहीं रोता है। हम जगन्नाथपुरी गए। समुद्र के तट पर हम खड़े हैं। अनन्त सागर लहरा रहा है। पुरी के सागर का दृश्य बड़ा ही अनोखा है। दुनिया में ऐसा प्यारा दृश्य अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। अचानक बादल आ गया। बादल बरसने लगा, वर्षा में नन्ही-नन्ही बूंदें बरसने लगी। बूंद बरस रही है जैसे किसी बच्चे-बच्ची के आंख से आंसू टपक कर गिर जाए।

नन्ही बूंदें रोयी कि सागर में क्या होगा?

और अनन्त सागर लहरा रहा है। नन्ही-सी बूंद है उस पर नीचे गिरेगी और डूब मरेगी। नन्ही बूंद रोयी सागर में क्या होगा?

सागर बोला—प्रिये, बिन्दु से सिन्धु बनोगी।

सागर ने कहा—अरे! रोती काहे हो? कहां से पैदा हुई हो, कहां से गयी आसमान पर। मेरी गोदी से जन्मी हो, मेरे गर्भ से जन्मी हो, मेरे भीतर से थोड़ी भाप उठकर आसमान पर चली गई और तुम बूंद बन गई! अब बिन्दु से सिन्धु बनने का अवसर आया है। तो इसमें रोने का क्या है? खुशी मनाओ, आनन्द मनाओ। लघु से विराट् बन रहे हो, व्यष्टि से समष्टि में जा रहे हो, जीवात्मा से परमात्मा में मिलने जा रहे हो, एक ही शरीर से सिमटे हुए से तुम अनन्त बनने जा रहे हो। शान्त से अनन्त बनने जा रहे हो, रोने का क्या मतलब, अशांत का क्या मतलब? किस चीज का शोक करोगे भाई! भगवान् से मिलने का शोक! अरे ढोल-शंख बजाओ। प्रभु मिलन की बेला आई है। इसलिए 'न शोचति', वह शोक नहीं करता है। यह तो कसौटी है। कौन भगवान् है 'ब्रह्म भूतो प्रसन्नात्मा' प्रसन्न

कौन रहता है? बड़ी से बड़ी विपत्ति आ जाए जिसे दुनिया विपत्ति समझती है, वह शोक नहीं करता 'न शोचति'।

वह शोक क्यों नहीं करता है? अगली कसौटी बताई 'न कांक्षति' उसकी कोई आकांक्षा ही नहीं है, उसकी कोई कामना ही नहीं है, उसकी आकांक्षा ही नहीं है। याद रखना जो चाह रखता है, आकांक्षा रखता है वह जरूर रोयेगा। कोई कामना, चाहना, आकांक्षा सदा पूरी, सर्वदा पूरी और पूर्ण रूप से पूरी नहीं होती। जो चाहते हैं वह होता नहीं। जो होता है वह भाता नहीं, जो भाता है वह रहता नहीं। मनुष्य कुछ और करना चाहता है वह होता ही नहीं, जो हो रहा है वह अच्छा ही नहीं लगता। जो अच्छा लगता है वह रहता ही नहीं, चला जाता है। यह सारा खेल ही ऐसा है। इसलिए दृष्टि रखो परम तत्त्व पर, शोक का कोई कारण नहीं होगा। आजकल दुनिया में बड़े-बड़े बनावटी भगवान् बन गए हैं और दुकान लग गई है, बाजार लग गए हैं, बड़े-बड़े भगवानों के पोस्टर लग गये हैं। कोई बाल योगेश्वर, कोई बाल भोगेश्वर बना बैठा है। चर्च में जाकर क्रिश्चियन लड़कियों से शादी करता है, बहुत-सा सामान अमेरीका से लाते हुए दिल्ली के हवाई अड्डे पर पकड़ा गया। Excise वालों ने, कस्टम (Custom) वालों ने, इशारा कर दिया Security की ओर कि इसका है, वह बाहर निकलकर फूलमाला पहनवाकर भाग गया। Security ने कागज पत्र देखे तो सब चीजों पर नाम पता लिखा है बाल योगेश्वर का। अब उसकी खोज-पड़ताल हुई। संसद में सवाल उठाया गया, वह फिर चला गया लन्दन। अमेरीका में अखबारों में उसने बड़े-बड़े फोटो छपवाए कि साक्षात् शरीरधारी ईश्वर ने अमेरीका में चरण रखा है, एकदम लोग आओ और उसके साथ इन्टरव्यू करो। बड़े-बड़े विज्ञापन छपवाए फोटो के साथ। वह छपे विज्ञापन। और बाद में जब यहां Custom वालों ने हवाई अड्डे पर सामान पकड़ा। लाखों का सामान तस्करी करके ले आया। तब उन्होंने वही फोटो फिर छापा और नीचे लिखा हिन्दुस्तान का तस्कर खुदा! हिन्दुस्तान का खुदा भी चोर हो गया है। हिन्दुस्तान का खुदा बना बैठा था बाल योगश्वर भगवान्। तस्करी का काम? अब कहो भारत की क्या प्रतिष्ठा बची?

एक आदमी पुरुलिया के बागलता का रहने वाला था। उसने कहा कि मैंने सारी धरती का केन्द्र खोज लिया है। बागलता केन्द्र है सारी धरती का और यहां पर बैठकर सारे विश्व को प्रकाश दूंगा। वह जबलपुर रेलवे वर्कशाप में साधारण क्लर्क था। कुछ तंत्र-मंत्र की साधना करके, कुछ छोटी-मोटी मेस्मरिज्म सीख ली तो वह बन गया तारक ब्रह्म, सदाशिव! वह श्रीकृष्ण का स्वरूप अपने को मानता था। वह अपने को सदाशिव, तारक ब्रह्म मानता था। आदिवासियों की बहुत सी जमीन हड़प ली, इधर-उधर से। आदिवासी बेचारे चिल्लाये, कोर्ट कचहरी में कैसे

जाएं वे गरीब हैं। एक दिन अचानक वनवासी का एक बैल उस भूमि में चरते-चरते चला गया, जो कल तक वनवासी की थी। आनन्दमार्गी साधु ने बैल को बर्छा मार दिया, बैल मर गया। लोगों को बड़ा दुःख हुआ। एक अलुतमान नाम का स्नातक कोलकाता से आया और आकर इनके पास कुछ काम खोजने लगा। उसको कहा—हां, तुमको किसी आनन्दमार्ग के स्कूल में काम दिला देंगे। उसको खिला दी नैफ्थलीन। नैफ्थलीन से चार दिन के लिए आदमी बेहोश हो जाता है, बिल्कुल जड़वत हो जाता है। मृतक जैसा हो जाता है। फिर ले जाकर के बाहर गाड़ दिया। इसको जलाएंगे नहीं, इसको कोई भयानक रोग हो गया है। जलाने से रोग फैल जाएगा। यह बहाना करके उसको गाड़ दिया। फिर गाड़ने के चार दिन बाद उसकी कब्र को खोदा, उसके शरीर को निकाला, उसके हाथ-पैर रगड़े, उसको होश में लाए और फिर कहा देखो भाई तुम मर गए। पुरुलिया के सब लोग जानते हैं तुम मर गये। और हमने तुम्हें पुनः जीवित कर दिया। अब लौटकर पुरुलिया जाओगे तो लोग कहेंगे उसका भूत आ गया है। इसलिए भूत मत बनो, अवधूत बन जाओ। इसलिए भगवा पहनो और हिमाचल प्रदेश में बिलासपुर के आनन्दमार्गी स्कूल में तुम्हारी नियुक्ति की जाती है। उसको बड़ा विचित्र लगा कि यह क्या धंधा हो रहा है। भूत का अवधूत! यह क्या चक्कर है? समझ में नहीं आया। उसने अपने पिता को कलकत्ता में तार कर दिया? पिता कलकत्ता से दौड़े पुरुलिया आए और इधर बाबा का आदेश हुआ कि जो तारक ब्रह्म बने थे जबर्दस्ती ले जाओ। हिमाचल के बिलासपुर पहुंचाओ। यदि रास्ते में न माने, रास्ते में अड़े-गड़े, बहुत बाधा करे तो इसको गाछ के साथ उलटा बांध कर काट दो। उसे जबर्दस्ती घसीट-घसीट कर ले जा रहे थे। टाटा से पार चाण्डील में बार-बार उसने कहा मेरा हृदय कह रहा है मेरे पिता पुरुलिया पहुंच गए हैं। पुरुलिया जाने दो। मैं आगे नहीं जाऊंगा। बहुत रोया। तब उसको गाछ के साथ उलटा बांध कर उसको काट दिया। इधर नर हत्या, उधर गो हत्या। पुरुलिया में आन्दोलन हो गया। बागलता जाकर लोगों ने सारा आश्रम उजाड़ दिया। बाबा ने कहा, कोई बात नहीं, आने दो, हम पानी का एक छींटा मारेंगे सबको भस्म कर देंगे। जब लोग आ गए, 5-6 साधु मारे गए, सब आश्रम उजड़ गया, तो खिड़की से बाबा भागकर कलकत्ता पहुंच गए और कलकत्ता जाकर वहां से फ्लाइट लेकर रांची पहुंच गए और कहा अब धरती का केन्द्र बागलता (पुरुलिया) से रांची आ गया है। रांची में केन्द्र लगाकर वहां चलाते रहे तो वहां पर बुद्धपूर्णिमा पर धर्मचक्र प्रवर्तन करते हैं। उस दिन जुलूस में कुछ कालेज के विद्यार्थियों ने कुछ जिज्ञासा की, बातचीत करनी चाही तो साधु ने उठाकर बर्छा मारना चाहा, कुल्हाड़ा निकाल लिया। छुरा निकाल लिया उससे विद्यार्थी लोगों को बहुत चोट लगी। उस पर विद्यार्थी टूट पड़े और वहां से भी सारा आश्रम उजड़ गया। वहां सारा आश्रम

उजड़ गया, वे पकड़ में नहीं आ सके। वे वहां से भागकर फिर पटना चले गए, जाना था जेल में। तो उनका धरती का केन्द्र घूमता रहा।

ऐसे बड़े-बड़े खुदा बने हुए लोग दुनिया में हैं। उसको अमेरीका के पत्रों ने 'हिन्दुस्तान का हत्यारा खुदा' कहा The Murderer God of Hindustan.

साई बाबा—एक और ऐसा बना हुआ जिसके पास कुछ सिद्धियां तो हैं, लोग आदर करते हैं। वे अपने हाथ से भस्म निकालते रहते हैं। उन्होंने धोखाधड़ी तो नहीं की पर हाथ से भस्म निकालने को लेकर अमेरीका ने लिखा था हिन्दुस्तान का जादूगर खुदा।

एक और जबलपुर में दर्शनशास्त्र के व्याख्याता थे श्री रजनीश। और धीरे-धीरे हर चीज को चौंकाने वाले ढंग से कहकर कुछ लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया और सेठ गोविन्द दास भी उनके प्रभाव में आए। फिर मुंबई में उन्होंने केन्द्र किया। फिर पुणे में केन्द्र किया। वे वहां लोगों को नंगा नचाते थे। वहां से वे अमेरीका चले गए। अमेरीका के पत्रों ने लिखा हिन्दुस्तान का नंगा खुदा Nude God of Hindustan.

एक महेश योगी है, जो खूब ठगते हैं Meditation के नाम पर। मोटी-मोटी फीस लेते हैं, काफी पैसा बना लिया है, विमान बना लिया है। उनको अमेरीका ने Luxurious God of India कहा। ऐसे बहुत से लोग खुदा बने बैठे हैं, लेकिन गीता में भगवान् ने जो परीक्षा दी है, कसौटी दी है—

ब्रह्मभूतः—ब्रह्मभूत कौन है? प्रसन्नात्मा। सदा प्रसन्न रहता है। उसकी कसौटी क्या है 'न शोचति' कभी शोक नहीं करता। उसकी कसौटी क्या है? वह कोई आकांक्षा ही नहीं करता।

चाह गई, चिन्ता मिटी मनुवा बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, सोई शाहंशाह।।

जिनके अन्दर चाह बची हुई है। समझो, वह स्वार्थी है। अंग्रेजी के शब्द Want का अर्थ है—चाह। want का दूसरा अर्थ है—कमी। He died for want of water. पानी की कमी से मर गया। रोगी ऑक्सीजन की कमी से मर गया। Patient died for want of oxygen. Want का अर्थ है कमी। कमी किसको होती है? जिसके अन्दर कमी हो वही इच्छा करता है। शरीर में कमी ही कमी है। मन में कमी ही कमी है। शरीर और मन में जीने वाला कमियों में जीता है। इसलिए कमियों के कारण से चाह करता है। और कमी के कारण चाह करने वाला, कमी के कारण स्वार्थ की पूर्ति करने वाला, कमी के कारण हाय-हाय करने वाला निम्न स्तर होता है। और क्या ऐसे लोगों से कोई भगवान् बनता है। कोई

कमी नहीं है, कोई चाह नहीं। रंच मात्र भी स्वार्थ नहीं है। केवल परमार्थ के लिए जीता है। कुछ नहीं चाहिए। कुछ नहीं चाहिए केवल विश्व कल्याण के लिए जीता है। वह भगवान् है। जिसकी अपनी ही चाह है वह भगवान् कैसा? निम्न स्तर का है। कोई थोड़ी मात्रा में निम्न स्तर का है, कोई अधिक मात्रा में निम्न स्तर का है। कमीनापन तब मिटता है जब हमारी कमी मिट जाती है।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। 2/55, गीता

जब सब प्रकार की कामनाओं को त्याग देता है प्रजहाति कामः। मन में आने वाली सब कामनाओं को त्याग देता है। आत्मा से आत्मा में सन्तुष्ट है। आत्मानन्द में संतुष्ट है। आत्मा तो शहंशाहों का शहंशाह है। आत्मा साक्षात् परमात्म रूप है। सारा त्रिभुवन का राज्य तो तुम्हारे पास है। हाथ फैलाकर भीख का कटोरा लेकर दुनिया के पास तू क्या मांगता है? यदि तू मांगता है, कमी वाला है तो तू कमीना है। यदि कुछ नहीं मांगता तब तू शहंशाह है।

उसकी अक्ल ठीक ठिकाने पर है। भगवान् ने कसौटियां दी हैं आदमी को परखने के लिए। सिद्धपुरुषों को परखने के लिए, स्थितप्रज्ञों को परखने के लिए। भगवान् ने कहा कि जो अपनी आत्मा को अपने वश में रखे, सिर्फ शरीर के निर्वाह के लिए इन्द्रियों से विषयों का भोग लेता है। वह व्यक्ति सदा प्रसन्न रहता है। और जो सदा प्रसन्न रहता है उसको प्रसादगुण प्राप्त होता है। उस प्रसाद गुण से, प्रसन्नता से सुख—दुःखों की हानि हो जाती है। इसलिए भगवान् कहते हैं—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते। 2/65, गीता

लेकिन प्रसाद में आए कैसे? राग-द्वेष छोड़कर

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। 2/64, गीता

राग-द्वेष को छोड़कर, राग-द्वेष से वियुक्त होकर अपने आपको वश में रखते हुए, इन्द्रियों से शरीर निर्वाह के लिए जितना भोग चाहिए उतना ही लेने वाला व्यक्ति प्रसाद गुण को प्राप्त होता है। सदा प्रसन्नता को प्राप्त होता है। तब सब दुःखों की आत्यन्तिक हानि हो जाती है। सब दुःख दूर होते हैं।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।। 2/65, गीता

प्रसन्नचेतस् जो व्यक्ति है उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित हो जाती है। उसकी बुद्धि सत्य में प्रतिष्ठित हो जाती है। उसकी बुद्धि सत्य को देखती है। सत्य दर्शन करती, सत्य का भोजन करती है क्योंकि उसको और कोई लाग-लपेट नहीं है। राग-द्वेष

नहीं है। उसका चित्त सदा प्रसन्न है। मन में मैल नहीं है, चित्त में कलुष नहीं है। चित्त में वैर है नहीं, चित्त में द्वेष नहीं है, चित्त में रियायत नहीं है। किसी के प्रति, इसलिए चित्त की डांवांडोल की स्थिति नहीं रही। चित्त स्थिति के द्वारा बुद्धि स्थिर हो गई। और ब्रह्म तत्त्व में, परम तत्त्व में और ईश्वरतत्त्व में टिक जाती है। राग-द्वेष—राग और द्वेष महाकपटी हैं। महाशत्रु हैं, मानवता खो देने वाली है। राग क्या है? जिनको अपना समझते हैं उनको अनुचित रियायत करना राग है। और द्वेष क्या है? जिनको पराया समझते हैं उन पर अनुचित अत्याचार करना द्वेष है। जानो सज्जनो और माताओ! संसार राग-द्वेष का ही नाम है। कोई अपने हैं, कोई पराये हैं। अपनों की रियायत परायों की शत्रुता निभाता है। और आधी दुनिया घरों में, घाटों में, वेश्यालयों में, मदिरालयों में शराब पीकर, नाच करके भोग विलास करती है। आधी दुनिया कोर्ट कचहरी में जाकर भाई-भाई पर, मित्रों पर, आत्मीयों पर मुकदमा करके, द्वेष प्रदर्शित करती हैं।

इस जीव ने मानो राग और द्वेष की आग लगा रखी है। एक रोग, एक आग लगा दी राग की। एक पेट्रोल की बोतल लेकर कपड़ों पर छींट दी है और दायें हाथ से आग लगा रहा है। नीचे से ऊपर और राग-द्वेष की अग्नि में जीव जल रहा है और ये जीव हाय-हाय कर रहा है, चिल्ला रहा है, हाय बचाओ, हाय बचाओ। यह आग किसने लगाई है? स्वयं आपने ही लगाई। स्वयं राग-द्वेष की आग लगाता है और फिर चिल्लाता है तो जल मर, तेरा कोई उपाय नहीं है। राग-द्वेष की अग्नि में जल रहा है। स्वामी रामतीर्थ के पास एक अमरीकी महिला आई—

मेरा एकमात्र इकलौता बच्चा मर गया है। मुझे शान्ति दीजिये। स्वामीजी ने कहा—पुत्र को चिर निद्रा में सोने दो शान्ति हो जायेगी। यदि तुम में मातृत्व शेष है तो इस हब्शी बच्चे को उठा ले और अपने पुत्र की तरह पाल। या तो राग छोड़ दे या द्वेष। अपना जो चला गया है उसका राग नहीं छूटता है, पराया जो अभाव में पड़ा है उसका द्वेष नहीं छूटता है। या तो राग छोड़ या द्वेष छोड़, यदि तुम से दोनों में से कोई नहीं छूटते तो शान्ति का और कोई रास्ता नहीं है। कोई उपाय न देखकर नीग्रो बच्चे को अपने बेटे की तरह पाला। इससे उसे शान्ति मिली।

हम घर में सत्यनारायण व्रत की कथा करते हैं। खीर पकवान बनाते हैं। घर में बड़ा आनन्द मंगल होता है। उसमें आदिवासी का बच्चा भूखा है। कई दिनों से भोजन नहीं मिला है। सतुआ के बीज खाता है, कुछ जड़ें खोद-खोद करके खाता है, भूखा सो जाता है। उसको डॉक्टर के पास जाने के लिए कार नहीं है, डॉक्टर की फीस का पैसा नहीं है, दवा का पैसा नहीं है। हमारे यहां बधाइयां हो रही है, बहुत अच्छा कार्यक्रम है भाई। क्या हम अपने सुख-साधनों में से उसको बांट सकते हैं। या हमारी पूजा में आ जाए, ब्याह-शादी में आ जाए, जूठे टुकड़े उठाने

के लिए आए। अरे-अरे! भागो-भागो। अरे! इसको मारो-मारो, इसको भगाओ-भगाओ। अरे, यह क्या मानवता बची है। जो अभाव में है उसको दुत्कारते रहेंगे। उससे द्वेष रखते रहेंगे तो क्या भगवान् सत्यनारायण हमसे प्रसन्न हो जाएंगे?

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। 2/64, गीता

राग-द्वेष छोड़कर इन्द्रियों के द्वारा विषयों का चरन करो? अपने आत्मा को अपने आत्मा के वश में रखो। तो तुम्हें सदा प्रसन्नता मिलेगी। तुम्हारे चित्त में मलिनता नहीं आएगी। चेहरे पर निन्दा का, चिन्ता का भाव, घृणा का भाव नहीं आएगा। तेरे चेहरे पर सदा हंसी मुस्कान, दिव्य मुस्कान रहेगी और इससे तेरे सब दु:खों की हानि हो जाएगी। इसलिए सदा एक बात की गांठ बांध लें। भगवान् कृष्ण सदा मुस्कराते हैं। वह शूलों के बीच में खिले हुए फूल हैं। मानवता की फुलवारी के पावनतम पुष्प हैं। जो जीवन भर मुस्कराते रहे। जीवन भर शान्ति फैलाते रहे और जीवन भर पावित्र्य की सुगंधि फैलाते रहे और आने वाले युग-युग के लिए उनका संदेश और उनकी सादगी, चारित्र्य की, पावित्र्य की सुगंधि युग-युग को प्रेरित करती रही।

रामायण एवं महाभारत काल की तुलना—रामायण की तुलना में महाभारत काल में हमारा चरित्र काफी गिर चुका था। रामायण का पिता अपनी जिह्वा से राम को वनवास जाने की बात कह नहीं सकता। रामायण का पुत्र पिता के दिए हुए वचन की रक्षा के लिए तपस्या की अग्नि में अपने को जला सकता था। महाभारत काल में वह मर्यादाएं विश्रृंखलित हो गयी। धृतराष्ट्र जैसा पिता अपने पापी बेटे को भी गलत काम से रोकता नहीं, और रोक सकता भी नहीं। रामायण के भाई ने भाई के लिए उत्सर्ग किया। अयोध्या के निष्कंटक राज्य को भाई ने भाई के लिए त्याग दिया। तिनके के समान छोड़ कर के चला गया। दूसरा भाई उसकी खोज में विलाप करता हुआ उसको मनाने के लिए गया। भाई के न लौटकर आने पर भाई की पादुका को 14 वर्ष तक पूजता रहा।

दुर्योधन—महाभारत काल का भाई अपने ही भाई के राज्य को छीनने के लिए षड्यंत्र करता रहता था। महाभारत का भाई दुर्योधन युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के राज्य को उनको देने की बात तो सोचता ही नहीं, किसी प्रकार से उनसे राज्य छीन लिया जाए और इनको मार्ग के कंटक के रूप में पांडवों को निकाल दिया जाए, इनको जान से मार दिया जाए इसकी चेष्टा करता रहता था। इसलिए कि दुर्योधन बड़ा दुष्ट योद्धा था। दुर्नीति से, दुष्टता से जो युद्ध करता है वह दुर्योधन है। वह छल से कपट से दूसरे को खत्म करना चाहता था। बहादुरी से लड़ने वाला योद्धा नहीं था। वह छल से युद्ध करने वाला योद्धा था। गुरु द्रोणाचार्य

खेल प्रतियोगिता—बचपन में खेलों की प्रतियोगिता का कार्यक्रम रखा। उस खेल प्रतियोगिता में अर्जुन ने धनुर्विद्या में प्रथम स्थान प्राप्त किया। कोई भी अर्जुन के मुकाबले में न पांडवों में से न कौरवों में टिक सका। मल्लयुद्ध में भीमसेन ने उठा-उठा कर, बार-बार दुर्योधन, दु:शासन को पटकनी दी। दोनों को बार-बार धूल चटा दी। गदायुद्ध में भीम और दुर्योधन लगभग समान दिखते थे। पर भीम ने अपने अधिक बल के कारण दुर्योधन को परास्त कर दिया। दुर्योधन ने इस बच्चों की खेल प्रतियोगिता में विजय पाने वाले खिलाड़ी को सम्मान देने के बहाने कहा कि अच्छा भीम! तुम खेलों में सबसे अच्छा आये हो, तुम जीत गए। तुमने प्रथम स्थान पाया है। आओ, आपके सम्मान में हम आपको मिष्टान्न-भोज देते हैं। मिठाई खिलाते हैं। और भोज के नाम पर विष के लड्डू भीमसेन को खिला दिए। मान लीजिये रांची कालेज का बोकारो की कालेज से हॉकी का खेल हो। बोकारो स्टील कालेज वाले जीत जाएं। रांची कालेज वाले हार जाएं। जीत-हार तो किसी न किसी की होती ही है। खेल भावना यह कहती है जो जीता है उसको बधाई दो। और मन को गंभीर रखो। मन में ओछा भाव, तुच्छ भाव, कृपण भाव न हो। लेकिन यदि रांची कालेज के छात्र कहें बोकारो कालेज के छात्रों को आओ भाई तुम्हारी जीत हुई है। अब हम तुम्हारी जीत की खुशी में भोज देंगे। पार्टी देंगे। उस पार्टी में उनको कुछ विषैली चीज खिला दें। तो सारा संसार रांची कालेज के विद्यार्थियों को लानत भेजेगा, धिक्कारेगा। नीच आदमी ने खेल में जीतने वाले को मिठाई के बहाने विष खिला दिया। ऐसा नीच योद्धा दुर्योधन था। भीमसेन को विष के लड्डू खिलाकर गंगा नदी में फेंक दिया। भीमसेन का भाग्य समझिये वह बेहोश होकर नदी के तल में चला गया। वहां कुछ विषैले सर्पों ने उसको डंक मारे। सर्पों का विष चढ़ने से, पहले जो लड्डू का विष था, विष ने विष को मार दिया और लड्डू का विष उतर गया। उसको होश आ गया और वह तैरते हुए ऊपर आ गया। उसकी जान बच गई। लेकिन आपके सामने एक चित्र आ गया कि ये पापी क्या कर सकते हैं? तनिक बड़ा होने पर इस खेल में जो बच्चों के खेल की चर्चा हमने की, उस खेल में एक और प्रसंग आया वह भी बड़ा रोचक है। धनुर्विद्या—अर्जुन और कर्ण—धनुर्विद्या में अर्जुन सबसे आगे निकला। तब दुर्योधन ने कहा अच्छा हम सब तो अर्जुन से हार गए। अर्जुन कर्ण का मुकाबला करके दिखाये। हमारे पास वीर कर्ण है, जो अर्जुन की टक्कर का है। अर्जुन तो तैयार हो गया अच्छा कर्ण से मुकाबला करेंगे, पर कृपाचार्य ने कहा, नहीं। यह तो राजकुमारों की प्रतियोगिता है। राजकुमारों की आपस में प्रतियोगिता हो रही है। इसमें किसी दूसरे को दखल देने का अधिकार नहीं है। ये कर्ण राजकुमार नहीं है। यह सूत पुत्र है। यह रथवान का बेटा है। इसको पालने वाली राधा थी, इसका पिता सूत-कर्म करता था, रथों का काम करता था। उसने इसका पालन किया इसलिए सब लोग उसको रथवान

का बेटा मानते थे। इसलिए कृपाचार्य ने कहा यह भाग नहीं ले सकता। राजकुमारों की प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकता। दुर्योधन ने कहा, अच्छा! इसको राजकुमार नहीं मानते इसलिए इसको प्रतियोगिता में अनुमति नहीं देते हैं। मैं तुरन्त अभी इसका राजतिलक करके अंगदेश का राज्य अर्थात् मुंगेर और भागलपुर का राज्य मैं इसको देता हूं। अब राजतिलक हो जाने से कर्ण भी राजा हो गया है। इसलिए राजकुमारों की प्रतियोगिता में यह भाग ले सकता है। तब भीमसेन ने ठहाका लगा करके कहा—क्या गधे को चन्दन का लेप करने से घोड़ा हो जाता है। कर्ण का राजतिलक कर दिया तो क्या कर्ण सूतपुत्र से राजपुत्र बन जाएगा। इससे कर्ण और दुर्योधन के मन में वैर की गांठ पड़ गई।

लाक्षागृह—पांडवों के तनिक बड़ा होने पर उनके लिए लाक्षागृह में लाख का भवन बनाया उसमें माता समेत जला देने का षड्यंत्र दुष्ट दुर्योधन ने किया। विदुरजी के द्वारा उनको सूचना मिल जाने पर वे लोग समय पर निकल गए। उस लाक्षागृह में पांच और अतिथि थे जो अपनी विधवा मां के साथ रात को वहां आकर ठहरे थे। वो भस्म हो गए। दूसरे दिन पांच जवानों का शव और एक स्त्री का शव देखकर दुर्योधन ने कहा, जीवन की सबसे बड़ी मेरी मनोकामना पूरी हो गई। मैंने पांचों पांडवों को भस्म कर दिया। उनकी मां को भी भस्म कर दिया। इससे आपको उसके चित्त का दर्पण मिलता है। वह किस प्रकार का व्यक्ति है।

वनवास और लक्ष्मण—रामायण काल का भाई, भाई के लिए जान निछावर करने के लिए तैयार है। लक्ष्मण को किसी ने वनवास नहीं दिया। न वनवास की चर्चा में वह कहीं आता है। न राज्यतिलक के झगड़े में कहीं आता है। स्वेच्छा से अपने भाई की रक्षा के लिए, भाई की सेवा के लिए कठोर तपस्या करके भाई का साथ देता है। भाई की रक्षा करता है। भाई के लिए प्राण निछावर के लिए तैयार है। जब हनुमानजी संजीवन औषध लेने के लिए आए और अचानक भरतजी यह सोच कर के कि यह आकाश में उड़ने वाला व्यक्ति कौन है? तीर मार दिया। हनुमानजी के उतरने पर सम्वाद मिला कि लक्ष्मण मूर्च्छित है और उसकी रक्षा के लिए जल्दी संजीवन औषध ले जाना जरूरी है। तब माता सुमित्रा ने एक सम्वाद भेजा। प्रभुराम की रक्षा के लिए जो मेरा लाल गया था वह यदि बेहोश पड़ा है। उसने यदि आंखें बंद कर ली और यदि वह बलिदान हो गया है तो मेरे पास दूसरा लाल है शत्रुघ्न। मैं उसको भेज देती हूं और शत्रुघ्न को कहा, जाओ। एक भाई तो भाई के लिए निछावर हो चुका है। अब उसकी मर्यादा को आगे तुम बढ़ाओ। ये रामायण काल के भाई थे। भाई के लिए भाई प्राण निछावर करने वाला। महाभारत काल का भाई कसाई हो गया था। भाई का प्राण पीने वाला, भाई का खून पीने वाला, भाई को विष पिलाने वाला, भाई को लाक्षागृह

में जलाने वाला, भाई से राज्य छीनने वाला, धोखे के पांसे फेंककर भाई का राज्य लूटने वाला।

रामायणकाल का भाई जिसने वनवास काल में भाभी का मुख नहीं देखा—और रामायण काल के भाई ने वनवास तक के काल में अपनी भाभी का मुख नहीं देखा था—उसके चरण देखे थे। आभूषणों की पहचान के समय लक्ष्मण कहते हैं—हे प्रभुराम! मैं सीतामाता का न मस्तकमणि पहचान सकता हूं, न केयूरमणि पहचान सकता हूं, न कुण्डल पहचान सकता हूं। मैं तो उनके पांव के नूपुर, पाइजेब पहचान सकता हूं। क्योंकि नित्य मैंने तो उनके चरणों में प्रणाम किया। यह तो रामायण काल का भाई है। महाभारत काल का भाई भरी सभा में अपनी भाभी की दुर्गति करने वाला, भाभी का तिरस्कार करने वाला, भाभी की साड़ी उतारने का पाप कृत्य करने वाला, ऐसा भाई हो गया। इसलिए इस परिप्रेक्ष्य में आप देखें। इतने भयंकर प्रकार के पापी, चरित्रहीन, अविवेकी, मर्यादाहीन लोगों के बढ़ जाने के कारण अब उनको समझाने वाले सब उपाय भी समाप्त हो जाने के कारण युद्ध अनिवार्य हो गया। युद्ध के सिवा और कोई रास्ता नहीं बचा।

भगवान् कृष्ण का अंतिम बार दुर्योधन को समझाने का प्रयास— भगवान् कृष्ण भी अंतिम बार दुर्योधन को समझाने गए और कहा—हे दुर्योधन! राज्य तो पाण्डवों का है, पाण्डु अमानत के रूप में रखकर गए थे धृतराष्ट्र के पास। धृतराष्ट्र अमानत में खयानत कर रहा है। तुम सब बेईमान बन रहे हो। 12 वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास दे दिया, उसको भी उन्होंने भोग लिया। तुमने और भी बड़े-बड़े पाप किए हैं। अब अन्तिम समझौते के रूप में कम से कम उनको पांच गांव दे दो। इन्द्रप्रस्थ, तिलप्रस्थ (मेरठ की तरफ का गांव है जिसे आजकल तिरुपत कहते हैं), याज्ञप्रस्थ, जिसे बागपत कहते हैं, पाणिप्रस्थ जिसे आजकल पानीपत कहते हैं और सोनप्रस्थ जिसे सोनीपत कहते हैं। ये दिल्ली के पास हैं। ये पांच गांव दे दो, इसके आधार पर ये बेचारे जी लेंगे। उस पापी दुर्योधन ने कहा—केशव! सूई के नोक के बराबर भी धरती मैं बिना युद्ध के नहीं दूंगा और भगवान् कृष्ण जो समझाने के लिए गए थे उन्हीं को बांधने की व्यर्थ कोशिश की।

हस्तिनापुर दुर्योधन की राजधानी थी। उसकी सेना, उसके सेवक सब थे। भगवान् कृष्ण ने जब अपनी एक भुजा उठाई, एक भुजा में उसने देखा लाखों-लाख सैनिक उनकी एक भुजा में नजर आए और तब हताश और भयकम्पित होकर दुर्योधन गिर गया। शान्तिदूत बनकर आये कृष्ण का यह सम्मान किया दुर्योधन ने।

भगवान् कृष्ण—भगवान् कृष्ण पर कुछ लोग कभी-कभी कीचड़ उछालने की कोशिश करते हैं। भगवान् कृष्ण ने व्रज में जितनी भी लीलायें की तब वह केवल नौ वर्ष के थे। नौ वर्ष की अवस्था में कंस को मारने के लिए निकले हैं।

कंस ने निमंत्रण भेजा है, कंस बड़ा कपटी है। भरी सभा में बच्चों को बुलाता है और कहता है— देखो भाई! यह पिटारी में लड्डू है, पेड़ा है, बर्फी है, मिठाइयां है। और जैसे ही बच्चे पिटारी खोलते हैं उसमें सांप, बिच्छू निकलते हैं। निकलते ही बच्चों को डस लेते हैं। पापी कंस ठहाका मारकर हंसता था—हा-हा। जो दूसरों को सता-सता करके, नन्हे बच्चों को मरवा कर सुख मानता है, वह तो पिशाच नहीं नर-पिशाच ही है। हे कृष्ण! आप मत जाओ। भगवान् कृष्ण कहते हैं—मैं तुम्हारे सिर पर हाथ रखकर सौगंध खाकर कहता हूं। इसको मारकर आऊंगा। अरे, तुम्हारे इतने-इतने छोटे हाथ तुम उसको मार पाओगे। अच्छा सौगंध खाओ उसको मारने के बाद तुम लौटकर आओगे। अच्छा सौगंध खाता हूं उसको मारने के बाद लौट कर आऊंगा। मारने के लिए गए। उसे केशों से पकड़ कर धरती पर घसीट कर घूसों से मार डाला और राजगीर में उसका श्वसुर था जरासंध। अरे तेरी लड़की विधवा हो गयी। कंस मारा गया। उसकी लड़की कंस की पत्नी थी। मैं बदला चुकाने जाऊंगा। बहुत बड़ी विशाल सेना लेकर चढ़ गया मथुरा पर। अब भगवान् कृष्ण बाल लीलायें करने वाले हैं, गोप बालाओं को वचन दिया मुझे जाना है। बलराम कहते हैं व्यक्तिगत प्रेम का वचन अपने स्थान पर है पर राष्ट्र का कर्तव्य उससे ऊंचा है श्रीकृष्ण। राष्ट्र पर विपत्ति आयी है। जरासंध चढ़ आया है। जरासंध का मुकाबला करना है। सत्रह बार जरासंध ने हमला किया। सत्रह बार मुकाबला किया। अन्त में जरासंध ने सोचा अब तो कोई उपाय नहीं है। ऐसे वीर हैं बलराम और कृष्ण। इनसे पार पाना कठिन है। अतः यूनान का राजा था कालयवन। उससे समझौता किया और कहा एक ओर से तुम बढ़ोगे और एक ओर से मैं बढ़ूंगा और उनको दोनों ओर से घेर लेंगे और खत्म कर देंगे। कालयवन बहुत-सी फौज लेकर आया। श्रीकृष्ण ने बलराम से कहा—देखो! बार-बार मथुरा में युद्ध होने से सैनिक तो मरते ही मरते हैं, साथ में जनता पर बड़ी विपत्ति आ जाती है। सारा शहर उजड़ जाता है। बहुत से निरपराध नर-नारी भी मर जाते हैं। मथुरा से खींचकर इसे दूसरी जगह ले जाएं। अतः हम मथुरा में युद्ध नहीं करेंगे। इसलिए कालयवन जब ललकारता हुआ आया तो बलराम और कृष्ण एक पहाड़ी पर भाग लिए। अरे-अरे! तू रण छोड़कर भाग गया। अरे, इसकी चिन्ता नहीं। आगे जाकर गुफा थी उसके द्वार पर कुछ आभूषण फेंक दिए और गुफा के एक कोने में जाकर छिप गये। वहां मुचुकुन्द नामक एक राजा था। जिसने देवासुर संग्राम में बहुत भारी युद्ध किया था। फिर उसने वर चाहा कि मैं युद्ध में बहुत थक गया हूं। मैं विश्राम चाहता हूं। मुझे कोई उठायें नहीं। जो मुझे उठाएगा, नींद खोलेगा उस पर मेरे नेत्रों की दृष्टि पड़ते ही भस्म हो जाएगा। उसे यह वर मिला हुआ था। इसलिए वह सोया हुआ था। भगवान् कृष्ण ने उन पर अपनी पीताम्बर उढ़ा दी और स्वयं कोने में छिप गये। जब कालयवन आया तो कहा, अरे कायर! तू भागकर यहां सो गया है। उठ, मुझसे

युद्ध कर। उसने उठाने के लिए लात मारी और मुचुकुन्द ने ज्योंही नेत्र खोले उसके नेत्रों की ज्योति से कालयवन भस्म हो गया। इस तरह युद्ध से कालयवन को ध्वस्त करके फिर चले गए द्वारिका। द्वारिका में पश्चिम से कोई आक्रान्ता आक्रमण न कर सके, युद्ध न कर सके इसलिए द्वारिका में समुद्र के बीच गढ़ बनाया। पश्चिम के आक्रमण को रोकने के लिए। फिर वहां से गए प्राग्ज्योतिषपुर असम के गोहाटी में, वहां नरकासुर ने 16 हजार ललनाओं को बंदी बनाकर रखा था। उनको मुक्त कराने के लिए नरकासुर का वध कर उनको मुक्त किया। बच्चों को मुक्त कर अपने माता-पिता के घरों में भेजा। लेकिन माता-पिता ने कहा भई शत्रुओं के घर में रही हुई लड़कियों को हम नहीं रखेंगे। समाज की रूढियों के कारण उन्हें स्थान नहीं मिला। तो भगवान् कृष्ण ने कहा मेरे देश की बेटियों को बाजारू औरत नहीं बनने देंगे। इसलिए केवल इनको सम्मान की उपाधि देने के लिए रानी का सम्मान दिया जाएगा। इसलिए मथुरा में इन रानियों के लिए 16 हजार भवन बनाए। ऐसा क्रान्तिकारी कदम भगवान् कृष्ण ने उठाया भारत की बेटियों की इज्जत को बचाने के लिए।

फिर पाण्डवों पर विपत्ति आयी उसमें लग गए। जीवनभर संग्रामों में लगे रहे। कभी शिशुपाल के वध में, तो कभी इसके तो कभी उसके, तो कभी रुक्मिणी-हरण में। तो सारे जीवन भर संग्राम में लगे रहे। इसलिए पुनः उन्हें मथुरा और वृंदावन में जाकर बृज के गोप-बालों से, बृज की गोप-बालाओं से मिलने का सुयोग कभी नहीं मिला। 9 वर्ष की अवस्था में जो बच्चा बाल लीलायें करता था उसके ऊपर कीचड़ उछालने वाला, कितना बड़ा नीच पापी है। उसके मन में कितना बड़ा पाप होगा। भगवान् पर पाप उछालकर अपने मन का पाप उछालना चाहता है। जो 9 वर्ष की अवस्था में बृज छोड़ गए और फिर बृज में जीवनभर पांव रखा ही नहीं। अवसर ही नहीं मिला। इसलिए भरे दरबार में जब द्रौपदी का चीरहरण हो रहा है तो द्रौपदी किसको पुकारती है। भरे दरबार में किसी की साड़ी खींच रहा है, किसी का केश खींच रहा है, किसी को भरे दरबार में अपमानित कर रहा हो। क्या वह औरत किसी गुण्डे को पुकारेगी? कभी नहीं पुकार सकती है। किसी चरित्रहीन व्यक्ति को पुकारेगी? कभी नहीं पुकार सकती है। द्रौपदी का चीरहरण करना चाह रहा है दुःशासन। क्योंकि द्रौपदी पुकारती—हे कृष्ण, हे द्वारिकावासी! तो कृष्ण के समान पवित्र चरित्र वाला कोई नहीं था। एक औरत का अपमान हो रहा है। तो क्या वह ऐसे का नाम पुकार सकती है जो पहले ही का गुण्डा है। नहीं पुकार सकती। सारे आलोचकों को द्रौपदी का यही वचन थप्पड़ मार रहा है। द्रौपदी उस संकट में पुकार किसको रही है। पुकार रही है कृष्ण को। उससे पवित्र चरित्रवाला कोई था नहीं। सबसे पावनतम चरित्र को पुकारती

है। भगवान् कृष्ण को आने में कुछ विलम्ब हुआ। द्रौपदी ने कहा—हे कृष्ण! हे अन्तर्यामी! तब भगवान् कृष्ण तुरन्त प्रकट हो गए। द्रौपदी ने बाद में कहा आपने आने में बहुत विलम्ब किया। कृष्ण ने कहा तुमने पुकारा हे द्वारकावासी, द्वारिका तो बहुत दूर है न। इसलिए द्वारिका से हस्तिनापुर आने में रथ को कई दिन लग जाते हैं और जैसे ही तुमने कहा—हे कृष्ण, हे अन्तर्यामी! तो अन्तर्यामी को प्रकट होने में तो एक क्षण भी नहीं लगता है। इतना अपने पुत्रों को, सज्जनों को, मित्रों को, शिष्यों को सब कुछ समझाता रहता हूं कभी मत कहो यह ऊपर वाले की कृपा है। यह हिन्दू की शब्दावली नहीं है। ऊपर कुछ नहीं होता है। मुसलमान, ईसाइयों की कल्पना है खुदा सातवें आसमान पर, चौथे आसमान पर बैठा है। यह हिन्दू की कल्पना नहीं है। हिन्दू की कल्पना है भगवान् अन्तर्यामी है! मेरा प्रभु मेरे साथ है। जो प्रभु मेरे से दूर है वह मेरी क्या मदद करेगा। जो प्रभु मेरे संग है वह हर पल में, हर श्वास-श्वास में, हर प्राण-प्राण में, पग-पग पर मेरा सहारा बनेगा। हर पग-पग पर मेरा मार्गदर्शन कर रहा है। मेरे शरीर रूपी रथ को चलाने वाला सारथि है। उसके मार्गदर्शन में चलता हूं। इसलिए निरन्तर कहो भीतर वाला, अन्तर्यामी की कृपा से। ऊपर वाले की कृपा है यह मुहावरा छोड़ दो। यह मुहावरा मुसलमानों से आ गया है। ऊपर वाले की बात मत करो, ऊपर वाला कुछ नहीं होता। अन्तर्वाले की बात करो। डॉ. राधाकृष्ण ने एक कथा लिखी है। पुराणों की एक कथा अपनी शब्दावली में बनाकर लिखी है। वैकुण्ठ में भगवान् बैठे हैं। लक्ष्मी चरण दबा रही है। भगवान् ने कहा, गरुड़ को बुलाओ, गरुड़ को बुलाओ। गरुड़ को क्यों बुलाओ? बोले, मेरे भक्त पर विपत्ति आयी है। संकट आया है। लक्ष्मी ने कहा, थोड़ा रुकें। भगवान् ने कहा नहीं, मुझे तुरन्त जाना है, भक्त ने पुकारा है। भक्त पर विपत्ति आयी है। गरुड़ पर बैठकर भगवान् बड़े वेग से गए फिर कुछ क्षण बाद लौटकर आ गए। लक्ष्मी ने कहा, भक्त की रक्षा हो गई। भक्त की रक्षा हो सकी। तब भगवान् ने कहां, हां लक्ष्मी मैं तो पहुंचा, पर मेरे पहुंचने से पहले अन्तर का नारायण पहुंच चुका था। इसलिए मेरा प्रभु अन्तर्यामी है। मेरा प्रभु मेरे अन्तर में है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। 18/61, गीता

ईश्वर सब भूतों के हृदय में स्थित रहता ही है और जैसे यंत्र में आरूढ़ कलपुर्जों को यंत्र घुमाता जाता है। ठीक इसी प्रकार अन्तर में बैठा हुआ ईश्वर सब जीवों को माया से यंत्रवत घुमाता है।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।। 10/20, गीता

गीता भगवान् का हृदय है न। इसलिए भगवान् कहते हैं गीता मे हृदयम् पार्थ। गीता मे शास्त्रमुत्तमम्। भगवान् कृष्ण के जन्म के दिन भगवान् के हृदय में झांककर तो देखो। भगवान् कहते हैं—हे गुडाकेश! मैं सब भूतों के हृदय में बैठा हुआ आत्मा हूं। गुडाकेश-निद्रा को जीतने वाले अर्जुन। अज्ञान की निद्रा को जीतने वाले हे अर्जुन! मैं तो आत्मा हूं। सब भूतों के हृदय में बैठा हूं। मैं सबका आदि हूं। सबका मध्यम भी मैं ही हूं। सब भूतों का अन्त भी मैं हूं।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।। 15/15, गीता

मैं सबके हृदय में बैठा हुआ हूं। मेरे से ही सबको स्मृति होती है, ज्ञान होता है, उनका भुलाना भी मेरे द्वारा ही होता है। सब वेदों के द्वारा जानने योग्य मैं ही हूं। वेदान्त का कर्ता भी मैं हूं। वेदों का सच्चा ज्ञाता भी मैं हूं। तो बार-बार प्रभु कह रहे हैं मैं तेरे अन्तर में हूं, अन्तर में स्थित हूं। सर्वस्व चाहं हृदि सन्निविष्टो तो भगवान् की वाणी को हटा करके, भगवान् की वाणी को काट करके कुरान की वाणी मत बोलो। बाइबिल की भी वाणी मत बोलो। मेरा प्रभु मेरा अन्तर्यामी। वैकुण्ठ-वैकुण्ठ-वैकुण्ठ। अरे क्या है वैकुण्ठ भाई। अरे वैकुण्ठ यह है भाई जब मन में कोई कामना नहीं बची। चाह की पूर्ति हो जाए तो लोभ बढ़ता है। चाह की पूर्ति जब तक नहीं होती तब तक चिन्ता बढ़ती है। चाह की पूर्ति हो जाने के बाद उसकी रक्षा की चिन्ता बढ़ती है। चाह की पूर्ति में बाधा आ जाए तो कुण्ठा होती है। और चाह की पूर्ति में बाधा डालने वाले पर ही क्रोध आता है। ये विकार हैं सब। चिन्ता, कुढ़न, क्रोध, कुण्ठा ये सब मन के मैल हैं, मन की गन्दगियां हैं। इसका मूल कारण मन की चाह है। इसलिए चाह गई चिन्ता गई, मनवा बेपरवाह। जिसके मन में कोई कुण्ठा नहीं बची, मन में कोई राग नहीं—द्वेष नहीं बचा जिसके अन्दर, कोई कुण्ठा नहीं बची उसका हृदय मन्दिर वैकुण्ठ। वैकुण्ठ यानी कुण्ठा मुक्त। मेरे हृदय के वैकुण्ठ में मेरा प्रभु विराजता है। इसको छोड़कर मैं कौन-से भगवान् को खोजने जाऊं। मेरा प्रभु मेरे संग में है। मेरे वैकुण्ठ में है। हृदय को पवित्र करो। हृदय को कुण्ठा से रहित करो। वैकुण्ठवासी ईश्वर का दर्शन निश्चय ही इसी हृदय में होगा। यह नकद धर्म है। इसी जीवन में यहीं पर जीवन्मुक्त होकर रहेंगे। वह उधार धर्म है जिसमें मरने के बाद कयामत के दिन के बाद जब 10 हजार साल के दस हजार युग बीत जाएंगे तब खुदा की कचहरी खुलेगी, तब कर्मों का फैसला होगा। तब उद्धार होगा।

अवतार इसीलिए हुआ उस काल में बहुत नैतिक पतन हो गया था। भाई भ्रातृत्व से गिर गया था। स्वामी स्वामित्व से गिर गया था। शिष्य शिष्यत्व से गिर गया था। कहां रामायण काल का शिष्य और कहां महाभारत काल का शिष्य।

कहां गुरु की भक्ति रामायण काल में और कहां गुरु के ऊपर आक्रमण करने के धंधे महाभारत काल में, छल कपट। ऐसे काल में भगवान् के अवतार की नितान्त आवश्यकता थी। इसलिए भगवान् ने उस काल में अवतार लिया। और यदि कोई अवतार को अनुकूल न माने तो दिव्य महापुरुष। जिसकी तुलना का महापुरुष आज तक दुनिया के इतिहास ने दूसरा पैदा ही नहीं किया है। ऐसे महापुरुष ने जन्म लिया है। आपको जैसे रुचे वैसे ही मानें। पर बात एक ही है। ऐसे दिव्य पुरुष का अवतरण हुआ, जन्म हुआ, जिसने जीवन की प्रत्येक श्वास, प्रत्येक पल, जीवन का प्रत्येक दिन, जीवन का प्रत्येक क्षण राष्ट्र की सेवा में, विश्व की सेवा में, युग के निर्माण में समर्पित कर दिया। अपने लिए जिसने कुछ नहीं चाहा। सदा जहां धर्म है वहां कृष्ण दौड़ कर जाते हैं।

यतो धर्मस्ततो जयः।

जहां धर्म है भगवान् कृष्ण वहीं है। धर्म के संगी, धर्म का साथ देने वाले। जहां पर धर्मात्माओं पर कष्ट पड़ेगा वहां भगवान् दौड़कर जाएंगे।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। 4/8, गीता

तीन कार्य हैं भगवान् के। साधुओं का परित्राण करना और जो दुष्ट लोग हैं उनका विनाश करना। धर्म की संस्थापना के लिए संभवामि युगे-युगे। आज से बीस वर्ष पहले संदीपनी साधनालय, मुंबई में विश्व हिन्दू परिषद का जन्म हुआ था। किसके लिए? इसी कार्य के लिए। सज्जनों के परित्राण के लिए। जो भारत के सच्चे पुत्र हैं, जो भारत की, भारतीयता की रक्षा करते हैं, उसका परित्राण करना। और जो भारत के टुकड़े करना चाहते हैं, भारत को लूटना चाहते हैं, भारत को बर्बाद करना चाहते हैं, उनके विनाश के लिए। और जो धर्म-धर्म का नाम लेते रहते हैं पर धर्म हमारे जीवन से उड़ गया है। हम Empty Label bottles बन गए हैं। खाली बोतल, लेबल लगाया है शुद्ध नेपाली मधु। मूल्य बीस रुपया। उठाकर देखा तो मधु की एक बूंद नहीं। दूसरी बोतल ली उसमें भी मधु की एक बूंद नहीं, मूल्य बीस रुपया।

अरे, हिन्दू! तू Empty bottle हिन्दू बन गया है। नाम रखा है हिन्दू का, हिन्दुत्व का। हिन्दुत्व का मधु तेरे अन्दर से गायब हो चुका है। इसलिए 1200-1300 साल से तू ठोकरें खा रहा है। क्या हूण, क्या शक, क्या यहूदी, क्या यवन, क्या तुर्क, क्या पठान, क्या मुगल, क्या संगाल, पठान, अंग्रेज की। चीनी, यूनानी, पाकिस्तान, बांग्लादेशी, अमरीकी, सब तुमको लात मार रहे हैं। तू जागता क्यों नहीं है? तू जागता क्यों नहीं, तू पहचान अपने आपको। अपने हिन्दुत्व के मधु को जागने

दे। अपने आपको हिन्दुत्व के मधु से भर ले। सच्चा हिन्दू बनकर जीना सीख। तब हिन्दुस्तान बचेगा। इसलिए धर्म संस्थापनार्थाय, धर्म की संस्थापना के लिए भगवान् कहते हैं मैं युग-युग में अवतार लेता हूं। जो यह तीन काम करे वह भगवान् का, काम करता है। जो भी दुनिया का, किसी भी मुल्क का कोई भी व्यक्ति हो यह तीन काम करे—साधु-सज्जनों का परित्राण करे, दुष्टों का विनाश करे और धर्म अर्थात् (कर्तव्य की चेतना उसको धर्म कहते हैं।) कर्तव्य की चेतना की स्थापना करे। सब कोई अपने-अपने कर्तव्य का निष्काम भाव से पालन करे। इसकी संस्थापना करे वही आदमी भगवान् का कार्य कर रहा है। जिसने इसी के लिए जीवन लगा दिया, वह भगवान् ही बन गया। भगवान् ने दरवाजे बंद नहीं कर दिए। कुरान के दरवाजे बंद हो चुके हैं। बाइबिल के दरवाजे बंद हो चुके हैं, उनकी बंद प्रयोगशाला है। डॉ. राधाकृष्णन् कहते हैं हिन्दुत्व अध्यात्म क्षेत्र की खुली प्रयोगशाला है, जिसको प्रवेश करना हो उसका स्वागत है। इसलिए भगवान् यह नहीं कहते कि केवल मैं भगवान् हो गया बस। वरन् हर व्यक्ति के अन्दर भगवान् का ही बीज है। अन्तर्यामी उसके अन्दर है। अन्तर के भगवान् को जान लो तो भगवान् हो गया। हर व्यक्ति को भगवान् की उपलब्धि, भगवान् की प्राप्ति होती है। हर व्यक्ति को भागवत स्वरूप बनने का अधिकार है। यह भगवान् ने गीता में बताया है।

भगवान् का राष्ट्र को संदेश क्या है? राष्ट्र के नाम भगवान् का संदेश सुनो—

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।।

11/33, गीता

अरे हिन्दू उठो! सोये मत रहो, पड़े मत रहो। गिड़गिड़ाते मत रहो। दूसरे का चरण चुम्बन मत करो। कमर सीधी करके उठो। भारत उठो। यश लाभ करो। यशस्वी जीवन जीना सीखो। शत्रुओं को जीतो, शत्रुओं को कभी मत क्षमा करो। शत्रुओं को जीत लो। जो शत्रु पश्चात्ताप करे उसे मन से जीत लो। जो पश्चात्ताप न करे उनको युद्ध में जीत लो। जीतो जरूर। शत्रु को जरूर जीतो। शत्रु को छोड़ो मत। पहली बात कहते हैं। अरे भारत उठो, गर्दन सीधी करो, मान-सम्मान के साथ। दूसरी बात कही यशस्वी जीवन जीओ। यह मत कहो कि—

रूखी सूखी खाय के ठण्डा पानी पी,
देख परायी चुपड़ी न तरसावे जीव।

दरिद्री का जीवन, अभाव का जीवन, जैसे-तैसे धक्का खाने वाला जीवन मत जीओ। यशस्वी जीवन जीओ। सब कहे शत्रु को जाने दो, जाने दो। नहीं, काहे जाने दो, शत्रु को जीत लो। पश्चात्ताप करे तो मन से जीतो न पश्चात्ताप करे तो युद्ध में जीतो। असि-धार से जीतो। जीतो जरूर। समृद्ध राज्य मांगो। वैभवशाली

जीवन जीओ। हां, भोगी मत बनो, विलासी मत बनो। अपने राष्ट्र को वैभवशाली बनाओ। समृद्ध राज्य भोगो। भगवान् का आदेश है। मैं नहीं कह रहा हूं, भगवान् कह रहे हैं।

पांचवीं बात भगवान् कहते हैं पापियों को स्वयं भगवान् ही मार देता है। ईश्वरीय शक्ति हमारे साथ है जब हम धर्म पर टिके हुए हैं। डरो मत, भगवान् उसको मारेगा ही। हे अर्जुन! तुम निमित्त मात्र बन जाओ। हे अर्जुन! तुम अहंकार मत करो कि मैंने मारा है। तभी ईश्वरीय शक्ति तुम्हारे साथ है। वैभवशाली राज्य भोगो, शत्रुओं को मारो। पर घमण्ड मत करो, नम्रतापूर्वक रहो।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।
गृहाण सम्मुखो भूत्वा प्रसीद परमेश्वर।

हे भगवान्! आपकी वस्तु आपके ही श्रीचरणों में समर्पित करता हूं। हे प्रभु! सम्मुख प्रकट होकर इसे ग्रहण करें तथा हम पर प्रसन्न हों। इन छः सूत्रों में सारा राष्ट्रीय तत्त्वदर्शन आ गया। पूरा राष्ट्रीय दर्शन राष्ट्र को कैसे जीना चाहिए इसमें पूरा आ गया।

शेक्सपियर के अध्येता—मेरे एक मित्र हैं। उन्होंने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में जाकर शेक्सपियर पर विशेष अध्ययन किया। ऑक्सफोर्ड से बहुत बढ़िया ज्ञान प्राप्त करके अंग्रेजी के और विशेषकर शेक्सपियर के बहुत अच्छे व्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध हुए। वे मुझे कहते थे प्रो. ओबराय, हम क्या करें? गीता हम पढ़ते हैं, तो बड़ी कठिन लगती है। हमारे पल्ले नहीं पड़ती। मैंने कहा, आप कैसे पढ़ते हैं? कहते हैं, सुबह उठते हैं। जल्दी-जल्दी तैयार होते हैं, नाश्ता सामने आ जाता है। तब पत्नी से कहते हैं दो मिनट रुको हम जरा गीतापाठ कर लेवें। फिर दो-चार श्लोक करके फिर जल्दी से नाश्ता करके कालेज भागते हैं। मैंने कहा, आपने तो गीतापाठ की रीति बना ली है। किसी तरीके से दो-चार श्लोक पढ़ना चाहिए। आप गीतापाठ के साथ न्याय नहीं करते। उन्होंने कहा—सो कैसे? हम तो गीतापाठ किए बिना कुछ खाते-पीते नहीं। मैंने कहा—देखिये, आपको शेक्सपियर का अध्ययन करते हुए कितना समय हो गया। उसने कहा सोलह साल तक तो एम.ए. पास किया, फिर ऑक्सफोर्ड में गया, विशेषाध्ययन के लिए। छह साल मैं वहां रहा। ऑक्सफोर्ड में रहकर, इंग्लैंड में रहकर मैंने शेक्सपियर का घर, उसके नाटक मंचन के स्थान, उसके सम्बन्ध के जितने स्थान हैं, ऐतिहासिक स्थान हैं सबका अध्ययन किया। उसने कहा 24 वर्ष यह हो गए, बीस वर्ष पढ़ाते हुए हो गए। 44 वर्ष से मेरा सम्पर्क हो गया शेक्सपियर से।

तो शेक्सपियर के बारे में जितना जानना चाहिए सब कुछ जान लिया है? नहीं जी, अभी तो हमने शेक्सपियर का शतांश भी नहीं जाना, सहस्रांश भी नहीं

जाना। शेक्सपियर तो बहुत गंभीर है। कुछ उसका अंश जाना। मैंने कहा—एक मनुष्य के, साधारण मनुष्य के साधारण नाटकों का अध्ययन करने के लिए आपने जीवन के 44 (चौंवालिस) वर्ष बर्बाद कर दिए और अभी आप कहते हैं आपने उसका शतांश नहीं जाना, सहस्रांश नहीं जाना। तो यह जो Divine play है। यह जो दिव्य नाटक है, ईश्वरीय नाटक है इस नाटक का अध्ययन करने के लिए आपने कितना समय दिया। एक मनुष्य के नाटक का अध्ययन करने के लिए जीवन के 44 वर्ष लगा दिए और ईश्वरीय नाटक, दिव्य नाटक के लिए आपके पास दो-चार सेकंड से अधिक समय नहीं निकलता?

तो कहता है, गीता नाटक है बहुत बढ़िया।

गीता नाटक कैसे? गीता में नाटकीय रोचकता है। इसमें मानो तीन बार पर्दा खुलता है।

पहला पर्दा उठता है। अर्जुन विषाद योग पहला अध्याय है। पहले पर्दे में एक गुरु-शिष्य प्रकट होते हैं। धृतराष्ट्र चूंकि पूछता है। तो पूछने वाले को शिष्य मान लिया जाता है और संजय चूंकि बताता है और संजय को दिव्यदृष्टि भी मिली हुई है, इसलिए उसको गुरु मान लिया जाता है। यह गुरु-शिष्य संवाद है।

यहां धृतराष्ट्र अपने बेटों के मोह में अंधा हुआ लोभी विषादी है जिसने अपने छोटे भाई के पुत्रों का राज्य हड़प लिया है और वह दुःखी है कहीं वीर पाण्डव उनसे यह राज्य छीन कर वापस न ले लेवें। गांधारी भी अपने पुत्रों का पाप न देखकर भगवान् कृष्ण को ही शाप दे बैठती है।

गीता नाटक का दूसरा पर्दा उठता है। दूसरे पर्दे में पुनः एक गुरु शिष्य प्रकट होते हैं। शिष्य दुर्योधन है, गुरु द्रोणाचार्य है। दुर्योधन भी स्वार्थी विषादी है, पापी-विषादी है, कुटिल विषादी है, ईर्ष्यालु विषादी है। दुर्योधन विषाद कर रहा है हाय! हमारी पाप की हंडिया फूटने ही वाली है। अब हमें कोई बचा नहीं सकेगा।

तीसरा पट्ट खुलता है जिसमें गीता के वास्तविक गायक भगवान् कृष्ण हैं और गीता का वास्तविक अधिकारी पात्र महावीर अर्जुन है। अर्जुन को भी विषाद है—हाय! ये हमारे वंशज मारे जायेंगे। इसलिए अर्जुन सात्त्विक विषादी है। उसको अपने स्वार्थ के लिए विषाद नहीं है। दूसरों के हित के लिए उसे विषाद हैं। है तो पापी, पर पापी होते हुए भी गोतिया हैं—भाई-भतीजा, चाचा-ताऊ, मामा, गुरु पितामह, श्वसुर आदि हैं।

भगवान् कृष्ण ने कहा—न्याय में, नीति में अपना-पराया कोई नहीं। सब समान हैं। एक आपने गांधारी देखी। दूसरी इंदिरा गांधी। जिसने अपने जीवनकाल

में इमरजेंसी लगाई। जिसने अपने बेटे संजय के सब पापों पर पट्टी बांध ली थी कि मुझे कुछ दिखाई नहीं देता। जो मरजी करे। ढाई सौ साल पहले भारत में एक और रानी भी हुई है।

रानी अहल्या बाई—वह रानी थी अहल्या बाई। उस अहल्या बाई ने बहुत यज्ञ-याग आदि करके एक पुत्र प्राप्त किया। पुत्र नन्हा था। उसका पति पानीपत की तीसरी लड़ाई में बलिदान हो गया। पति के साथ सती होना चाहती थी। सब लोगों ने कहा—आपने इतने यज्ञ-योग आदि करके एक पुत्र प्राप्त किया है। इस पुत्र की रक्षा के लिए आप शरीर को मत त्यागो। उसने स्वीकार कर लिया। पुत्र की संरक्षिका बन गई। बड़ी धर्मपरायण थी। नीतिपरायण थी। उसी के अनुसार राज्य चलाती थी। पुत्र जवान हो गया। राजतिलक के योग्य हो गया। तब अचानक एक विचित्र घटना घटी। रानी के दरबार में शिकायत पहुंची। हे धर्मात्मा रानी! आपका जवान बेटा कुछ ऐसा पाप कर चुका है जिस पाप के लिए प्रजाजन में कोई वैसा पाप करे, चरित्रहीनता का पाप, यौनाचार का पाप, यौन की उच्छृंखलता का पाप, आप उसको प्राणदण्ड देती। रानी ने कहा—अच्छा! रानी ने जांच-पड़ताल की। देखा, ठीक है। रानी ने आदेश दिया—जाओ, मेरे इकलौते जवान बेटे को, जिसका राजतिलक कुछ दिन में होने वाला था, कहा कि इसको हाथी के पांव के नीचे कुचलवा दो। सारी प्रजा रो उठी, मंत्रीगण रो उठे। रानी ने कहा, नहीं! न्याय में अपना-पराया कोई नहीं है। सारी प्रजायें मेरी संतान हैं। सब प्रजाजन मेरे पुत्र हैं। जो न्याय इनके लिए है वही न्याय इसके लिए भी है। सब प्रजाजनों के रोते हुए भी उसने अपने बेटे को हाथी के पांव के नीचे कुचलवा दिया। एक आंसू नहीं बहाया। प्रजा रो रही हैं। और, जब उसका प्राण शांत हो गया। शरीर शांत हो गया। तब रानी ने कहा—अच्छा प्रजाजनो! जो मेरा रानी के नाते कर्तव्य था वह मैंने किया है। अब मुझे मां का कर्तव्य पूरा करना है। रानी का लिबास उतारा। और सफेद साड़ी पहनकर रानी ने जो विलाप किया उससे दसों दिशायें रो उठी। बड़ा कारुणिक दृश्य हुआ। उसने कहा, मुझे रानी का कर्तव्य भी निभाना है, मां का कर्तव्य भी निभाना है। अपने हाथों जाकर उसका अग्नि संस्कार किया। उसकी छोटी-सी समाधि, नर्मदा नदी के किनारे मध्यप्रदेश के महेश्वर स्थान पर आज भी है। रानी यह थी अहल्या बाई जिसने गीता के सिद्धान्त के अनुसार अपने-पराये में कोई भेद नहीं किया। न्याय में सब समान हैं।

गीता के अनुसार चलने से जीवन कितना पवित्र, कितना श्रेष्ठ बनता है। और गीता के सिद्धान्तों की अवहेलना करने से हम कितने पतित हो जाते हैं।

भारतीय सेना के प्रथम सर्वोच्च जनरल करिअप्पा और उसके पिताजी—भारत के स्वाधीन होने के बाद जनरल करिअप्पा भारत के सर्वोच्च

सैन्य अधिकारी थे। उनसे मैंने वार्त्तालाप किया। मैंने पूछा, आपके जीवन में सबसे बड़ा महापुरुष कौन था जिससे आपने कुछ सीखा और उसकी छाप आपके जीवन पर पड़ी? वे मुसकराकर बोले, मेरे जीवन में सबसे बड़ा महापुरुष मेरे अपने पूज्य पिताजी थे। उन्होंने कहा, मेरे पिता मजिस्ट्रेट थे। एक संबंधी के यहां किसी का स्वर्गवास हो गया। उनको वहां पहुंचना था दूर गांव में वह स्थान था। दूसरे दिन प्रातःकाल कचहरी में सेशन कोर्ट में पहुंचना था, आवागमन का कोई साधन नहीं मिलने पर वे सारी रात पैदल चले। प्रातःकाल अपनी कचहरी में उपस्थित हुए। ऐसी थी उनकी कर्तव्यपरायणता।

एक हमारे संबंधी थे। बहुत बूढ़े थे। उन बूढ़े संबंधी पर कोई केस बन गया। वह केस कई छोटी, बाहर की दूसरी अदालतों से होते-होते मेरे पिता की कचहरी में पहुंच गया। मेरे पिताजी को फैसला करना था। उस वृद्ध पुरुष ने सोचा अब तो अपने संबंधी के पास केस पहुंच गया है। कोई चिन्ता वाली बात नहीं। उनको पत्र लिखा मैं अमुक तिथि को आ रहा हूं। तो कार लेकर मेरे पिता उसकी अगवानी के लिए गए। उनका चरण स्पर्श किया, घर लाए। घर लाकर उनको खूब बढ़िया ढंग से भोजन करवाया। इतनी उनकी खातिर की। उनको लगा अब तो इनको कुछ कहने की जरूरत ही नहीं। यह मुझको पहचानता है ही। कल इसकी कचहरी में मेरा केस है। तो इतना मेरा आदर कर रहा है तो अब तो मैं इस केस से मुक्त हो जाऊंगा। दूसरे दिन जब कचहरी खुली। यह व्यक्ति जिसने उनके घर में ही खाया था, सोया था। कचहरी खुली तो दोनों ओर के वकीलों से बात की, बहस की फाइल के अनुसार। इन्होंने न्यायबुद्धि से निर्णय दिया। मजिस्ट्रेट ने उस व्यक्ति को जो उनका संबंधी था, उनको छः महीने का कठोर कारावास दिया। वह बार-बार कोशिश करे मजिस्ट्रेट की ओर देखूं तो सही। मजिस्ट्रेट मेरी ओर देखे तो सही। क्या मुझे पहचान नहीं रहा है। दिन में दस बार मेरे चरण स्पर्श करता था, बढ़िया खाना खिलाता था। मेरी ओर देखता तक नहीं है। लेकिन वह अपनी फाइल की ओर देख रहा है व्यक्ति की ओर बिल्कुल देख ही नहीं रहा है। उनको कारागार भेज दिया। जिसको कारागार भेजा गया मन में बड़ा पछतावा रहा। यह क्या हो गया? मैंने तो सोचा था मेरा केस ठीक तो जाएगा। मुझे कारागार भेज दिया। जब उसकी छः माह की अवधि पूरी हुई उस दिन पुनः जेल के गेट पर कार लेकर मेरे पिता पहुंच गए। वे जेल से निकले तो पुनः उनका चरण स्पर्श किया। पुनः अपनी कार में बैठाकर अपने घर ले गए, उनका स्वागत किया। ये मेरे पिता थे जो कर्तव्य था, वही किया। कर्तव्य तलवार की धार है। उस पर चलने वाला आदमी बहादुर होना चाहिए। न्यायप्रिय होना चाहिए। विवेकी होना चाहिए। वह अपने-पराये का भेद करने वाला नहीं होना चाहिए।

न उसके मन में राग था न द्वेष था। राग है अपनों के प्रति नाजायज रियायत। द्वेष है पराये के प्रति नाजायज नफरत। नाजायज वैर, नाजायज कटुता। यह द्वेष है। राग-द्वेष दोनों से बचकर चलना है। भगवान् कहते हैं—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। 2/64, गीता

जो राग और द्वेष दोनों से निर्लिप्त होकर और अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखता हुआ संसार के सब कर्तव्य निभाता है वह प्रसन्नता को प्राप्त होता है। वह मंद-मंद मुस्कराता रहता है। उसको भय का कोई कारण नहीं।

फूल को, कुसुम को हम कहते हैं सुमन। फूल का नाम है सुमन। फूल जिन्दगी के प्रथम श्वास से लेकर जीवन के अन्तिम श्वास तक मुसकराते रहते हैं। फूल के चारों ओर शूल पड़े हुए हैं। शूल कहते हैं अरे फूल! तू मुसकराता क्यों है? तनिक हवा का झोंका आएगा हम तेरा कलेजा चीर डालेंगे। दायें शूल, बायें शूल, आगे शूल, पीछे शूल, ऊपर शूल, नीचे शूल। चारों ओर शूलों से घिरा हुआ फूल मुस्कराता है। कहता है, अरे शूलो! तुम तो शूल हो। तुम्हारा काम ही किसी को दु:ख देना है, किसी को सालना है। मैं सुमन हूं। मेरा काम मुस्कराना है। क्यों? क्योंकि मैं सुमन हूं। सुमन कौन? सुमन अच्छे मन वाला। जिसके मन में किसी के प्रति राग नहीं है। किसी के प्रति द्वेष नहीं है। वह सुमन है। उसका मन अच्छा है। उसके मन में मैल है नहीं। इसलिए वह जिन्दगीभर मुस्कराता रहता है। राग-द्वेष से वियुक्त हो कर जो सबका परिपालन करता है।

राम प्यारे और सरदार प्रतापसिंह—समाज में दो ही बड़े रोग लगे हुए हैं। राग, अपनों के प्रति अनुचित रियायत। अपने बेटों के सब गुनाह माफ। उनके गुनाहों को देखना ही नहीं। बड़े-बड़े गुनाह किये जा रहे हैं उनको माफ किए जा रहे हैं। परायों के प्रति द्वेष। ऐ, तू मेरे सामने आंख दिखाता है तेरी गर्दन मरोड़ दूंगा। कामरेड राम प्यारे जो खुद कांग्रेस का मेम्बर था। विधानसभा में इतना ही कहा प्रतापसिंह को—सरदार साहब! अपनी इज्जत की रक्षा करो। आपके बेटों ने आपका नाम बदनाम कर रखा है। ईंट के भट्टों वालों से ईंट लेकर पैसे नहीं देते। सरकार को बिजली का पैसा नहीं चुकाते। सिनेमाघर बना लिया। किसी से लकड़ी ली और फर्नीचर लिया उसका पैसा नहीं देते। मिलिटरी अफसर की बीबी आती है सिनेमाघर में वहां पर उसके साथ बदमाशी हो जाती है। उसके चरित्र पर हमला हो जाता है। शीलहरण हो जाता है। क्या-क्या पाप कर रहे हैं। आप अपनी इज्जत बचाइए। ये क्या हो रहा है? उसका इतना कहना था कि—अच्छा! तेरा मगज (मानस) ठीक करूंगा।

उसी दिन वह बेचारा चण्डीगढ़ से बस में बैठकर (करनाल में उसकी कांस्ट्टियुएंसी थी।) थाने के सामने बस से उतरा। तो 32 गुण्डों ने एक साथ उस पर प्रहार करके उसके शरीर में घाव ही घाव कर दिए। मरते-मरते बचा। तीन-चार महीने के बाद कई घाव लिए हुए और स्ट्रेचर पर डालकर लोग उसको ले गए पंडित नेहरू को दिखाने के लिए। आपके प्यारे सरदार प्रतापसिंह ने क्या किया। उन्होंने कहा, मैं क्या कर सकता हूं। पंजाब में रहना है उनके साथ बना करके रहना पड़ेगा। अत्याचारी के साथ बनाकर रखनी पड़ेगी। ये क्या है? राग है और द्वेष है। सुन्दर प्यारे कुछ भी करे, उनके पुत्र वीरेन्द्र प्यारे कुछ भी करें वह सह जाए क्योंकि वह अपना है। और उसका नाम लेकर अपनी इज्जत बचाने के लिए मेरे पर थोड़ा-सा भी लांछन लगाए, मुझे समझाए तो वह सह्य नहीं होगा। तो अपने और पराये का यह जो भेद है। हम क्या कर रहे हैं, जो अपने हैं, अपनों के कारण कुम्भापरवरी कर रहे हैं। अपनों के कारण Freedism हो रही है। अपनों के कारण अपनों को नौकरियां दी जा रही हैं। अपनों के कारण भाई-भतीजावाद चल रहा है और पराये के कारण दूसरों के गांवों के गांवों पर हमले किए जा रहे हैं। दूसरों की बस्तियां उजाड़ी जा रही है। और दूसरों को आधे रास्ते में रोककर गोली मारी जा रही है। पूरे गांव में जाकर उनके घर को चारों ओर से घेरकर उनके घरों में आग लगाई जा रही है। पूरे के पूरे परिवार में उसके साथ किसी का द्वेष हो गया। हाथी ले जाकर के हाथी से रात में उनकी सोयी हुई अवस्था में उनकी खोपड़ियों को पांव के नीचे कुचलवा दिया गया है। राग और द्वेष—राग और द्वेष, नाइट क्लबों में शराब पीकर परायी औरतों की बगल में हाथ देकर नाचने वाले लोग राग की अग्नि में जल रहे हैं। कोर्ट-कचहरी में भाई-भाई पर केस करने वाले, गोतिया गोतिया से झगड़ने वाले, बाप पर फरसा लेकर दौड़ने वाले, मां को लात मारने वाले द्वेष की अग्नि से जल रहे हैं। राग और द्वेष की अग्नि से समाज जल रहा है। इसलिए हमें गीता का अमृत चाहिए उसको बचाने के लिए।



गीता वह बिना तेल का दीपक है जो अनन्त काल तक हमारे ज्ञान मन्दिर में प्रकाश करता रहेगा। पाश्चात्य दार्शनिक ग्रंथ भले ही खूब चमके किन्तु हमारे लघु दीपक का प्रकाश उन सबसे अधिक चमककर उन्हें ग्रस लेगा।

—द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर



भगवान् श्रीकृष्ण का विश्वव्यापी प्रभाव

भगवान् श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद का पावन व्यक्तित्व ऐसे पूर्ण पुरुष का प्रकाश है कि विश्व के सभी देश उनके जीवन एवं संदेश से अनुप्राणित एवं प्रेरणा-पूरित हुए हैं। नेपाल संसार का एकमात्र घोषित हिन्दू राष्ट्र है।

नेपाल—नेपाल में भगवान् श्रीकृष्ण के मंदिरों एवं मूर्तियों का बाहुल्य है। काष्ठमण्डप (काठमाण्डू) से 7 मील की दूरी पर नीलकण्ठ नामक स्थान पर लगभग 100 फुट लम्बी प्राकृतिक पाषाणावेष्ठित झील में लगभग 60 फुट लम्बी पाषाण-निर्मित शेषनाग की शय्या पर शेषशायी भगवान् विष्णु की (7वीं शती में निर्मित) लगभग 50 फुट लम्बी पाषाणमूर्ति इतनी भव्य एवं विराट है कि उसकी तुलना की शेषशायी मूर्ति संसार में अन्यत्र कहीं नहीं है। प्राचीन राजधानी ललितपुर (पाटव) में राजा सिद्धि नरसिंह मल्ल द्वारा सन् 1930 में मथुरा के प्रसिद्ध श्रीकृष्ण मंदिर की अनुकृति पर निर्मित श्रीकृष्ण मंदिर अपने प्रकार का अनूठा तीर्थस्थल है। राजा ने स्वप्न में राधा-कृष्ण को दरबार के सामने देखा था अतः दरबार चौक में उसी स्थल पर उन्होंने वह मंदिर निर्माण करवा दिया। श्रीमद् भागवत एवं महाभारत के चित्रों द्वारा मंदिर को सुसज्जित किया गया है। भक्तपुर में वलेज् भवानी के सुवर्ण मन्दिर में एक सुन्दर भित्ति चित्र है जिसमें बालमुकुन्द भगवान् वंशी बजा रहे हैं तथा इन्द्र झाल बजा रहे हैं एवं ब्रह्मा, विष्णु, महेश वंशी की लय पर मुग्ध होकर नृत्य कर रहे हैं। चाग नारायण में गरुड़ की मूर्ति तथा काठमाण्डू में विष्णु की चतुर्मुख सुवर्ण मूर्ति सचमुच अतुलनीय है। चांगू नारायण में 12वीं शती की नृसिंहावतार की सुन्दर मूर्ति है। जहाँ वैकुण्ठनाथ की मूर्ति तो अत्यन्त आकर्षक है। शिखा नारायण नामक तीर्थ पर एक पहाड़ी पर सुरम्य दृश्य के बीच राजा हरिदत्त वर्मा (चौथी शती) द्वारा बनवाया हुआ भगवान् विष्णु के वामनरूप का मंदिर है। भगवान् वामन नारायण अपने तीन डग से त्रिलोकी को मापते हुए दिखाए गए हैं। विष्णु के वाराह अवतार की मूर्ति तो भारत की उदयगिरि की वाराह मूर्ति से भी अधिक भव्य है। गो-माता तो नेपाल का राष्ट्रीय पशु एवं धार्मिक पवित्र प्रतीक हैं तथा गो-वध का दुस्साहस करने वाले के लिए प्राणदण्ड का विधान है। भगवान् श्रीकृष्ण के बालरूप पर सुन्दर लीलाएं आज तक होती हैं तथा भगवान् द्वारा गाई गई श्रीमद्भगवद्गीता पर नेपाल में अनेक भाष्यों, अनुवादों

के अतिरिक्त दैनिक कथा-प्रवचन, गोष्ठियों का आयोजन होता है। गीता के 'अभय' और 'अमरत्व' के संदेशों को तो मानों जीवन का मंत्र मान लेने से नेपाली गोखला वीर विश्व भर में अपने अतुलनीय साहस एवं वीरत्व के लिए प्रख्यात हैं।

लद्दाख—लद्दाख भारत के कश्मीर राज्य का तिब्बत को स्पर्श करता हुआ प्रदेश धर्म एवं संस्कृति में तिब्बती बौद्ध जीवन के बहुत निकट है। फिर भी स्वात घाटी में 8वीं शताब्दी की विष्णु बलराम (भगवान् श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता) की पद्मासन संस्थित सुन्दर मूर्ति मिली है। बलरामजी चतुर्भुज दर्शाए गए हैं जिनके ऊपर के दाएं हाथ में हल और बाएं में मूसल है तथा नीचे के दाएं हाथ में कमल तथा बाएं में नवनीत (मक्खन) का गोला है।

लद्दाख, भूटान, सिक्किम में बौद्ध धर्म के 8 पवित्र प्रतीकों में भगवान् विष्णु के शंख एवं चक्र भी सम्मिलित हैं। लद्दाख के थिक्षे मठ की भित्ति पर भगवान् विष्णु के वाहन 'गरुड' का सुन्दर-भव्य चित्र है।

सिक्किम—सिक्किम देश का नाम संस्कृत के सुखिम् शब्द से पड़ा है, जिसका अर्थ है सुख, शांति का प्रदेश। 60 प्रतिशत लोग भारतीय वंश के हैं। बौद्ध धर्म का विशेष प्रचलन है किन्तु वैष्णव धर्म के प्रतीकों की विशेष प्रतिष्ठा है। भारत के आचार्य पद्मसंभव ने वहाँ योग का विशेष प्रचार किया था। मठों की प्राचीरों पर श्रीकृष्ण चरित्र के चित्र यत्र-तत्र मिलते हैं। सिक्किम में 60% से अधिक लोग नेपाली हैं जो पूर्णतः हिन्दू हैं तथा श्रीकृष्ण एवं अन्य हिन्दू देवी-देवताओं को पूजते हैं। वैसे हिन्दू धर्म एवं बौद्ध धर्म में सुन्दर सामंजस्य है। श्री कृष्णाष्टमी एवं बुद्ध जयंती महोत्सव सभी लोग मिल-जुल कर सोत्साह मनाते हैं। मुखौटा लीला एवं श्रीकृष्ण लीला का भी प्रचलन है।

श्रीलंका—राम, कृष्ण आदि अनेक अवतारों की तथा लक्ष्मण, कार्तिकेय, गणेश, विभीषण आदि की मूर्तियाँ हैं। दोण्ड्रा में 1500 वर्ष पुराना एक विष्णु मंदिर था जिसमें भगवान् विष्णु की स्वर्ण मूर्ति की पूजा होती थी। पुर्तगालियों ने अपने आक्रमण में उक्त मंदिर को क्षतिग्रस्त कर दिया था। इसमें भगवान् शेष अभी तक वर्तमान हैं। लंका में कामधेनु का मंदिर है जो भारत में भी सम्भवतः नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्द्र की कोप-वृष्टि से व्रज को बचाने के लिए गोवर्धन पर्वत को 8 दिन के लिए उंगली पर धारण किया था तथा आठवें दिन कामधेनु गाय ने प्रकट होकर अपनी दुग्ध-धाराओं से भगवान् श्रीकृष्ण का अभिषेक किया था तथा उन्हें गोविन्द की उपाधि दी थी। श्रीलंका के कामधेनु मंदिर का दर्शन कर नेत्र व्रजभूमि की गोवर्धन लीला के पुनः दर्शन से करने लगते हैं।

भगवान् विष्णु के श्री-चरणों से जो पतित पावन गंगा प्रवाहित हुई उसके प्रति लंकावासियों की इतनी श्रद्धा है कि उन्होंने अपने देश की 4 प्रमुख नदियों का

नाम ही गंगा नाम से विभूषित कर दिया है, यथा कलू गंगा, केलती गंगा, महावेली गंगा तथा माणिक्य गंगा।

ब्रह्मदेश—बर्मा का प्रमुख तथा अत्यन्त प्राचीन नगर प्रोम कभी वैष्णव धर्म का एक प्रमुख गढ़ रहा है। उस समय इस नगर का नाम 'विष्णोमिया' अर्थात् विष्णुपुरी था। उस समय इसे 'श्रीक्षेत्र' भी कहा जाता था। बौद्ध कथाओं के अनुसार इस नगर का निर्माण स्वयं श्रीविष्णु ने ही विश्वकर्मा, इन्द्र, नाग, गरुड, चण्ड परमेश्वर तथा गणपति की सहायता से किया था। ब्रह्मदेश में भगवान् श्रीकृष्ण के वंशज अनिरुद्ध के नाम पर एक राजा अनिरुद्ध (1044 ई.) हुआ जिसने अनिरुद्धपुर (अनोरथपुर, पगान) नामक नगर में राजधानी बनाई, जहाँ 16 वर्गमील क्षेत्र में 5000 मंदिर आज भी वर्तमान हैं। ब्रह्मदेश के हेलांग नगर में अभी तक भगवान् विष्णु का एक विशाल प्राचीन मंदिर विद्यमान है जो लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। यहाँ की गरुडवाहन विष्णु की प्रधानमूर्ति बर्लिन (जर्मनी) के संग्रहालय में ले जाई जा चुकी है किन्तु मंदिर की भित्तियों पर भगवान् विष्णु के दशावतारों की अत्यन्त भावपूर्ण मूर्तियाँ अभी भी विद्यमान हैं। भू-देवी के साथ वाराह, हिरण्यकशिपु का वध करते हुए नृसिंह, त्रिभंग मुद्रा में खड़े श्रीराम, परशु आदि शस्त्रास्त्र धारण किये हुए परशुराम, वंशीवादन करते हुए मुरलीमनोहर भगवान् श्रीकृष्ण आदि की मूर्तियाँ बड़ी चित्ताकर्षक हैं। प्रथम शती में तेलंगाना तथा उत्कल प्रदेश के भारतीय लोगों ने ब्रह्मदेश को धर्म, संस्कृति और भाषा दी थी। लगभग चार लाख तेलंग लोग अभी भी ब्रह्मदेश में हैं। ई. सन् से पूर्व ब्रह्मदेश में केवल सनातन धर्म के ही हिन्दू मंदिर थे। तीसरी शताब्दी में उन्हीं हिन्दू मंदिरों को बौद्ध मंदिरों में परिवर्तित किया गया।

थाईदेश—ब्रह्मदेश को स्पर्श करता हुआ पूर्व की ओर अगला देश थाईदेश अथवा स्यामदेश है। स्यामदेश नाम हरीतिमा के कारण पड़ा तथा थाईदेश का अर्थ है—स्वतंत्र लोगों का देश। प्रथम शती से भारतीयों द्वारा यहाँ सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति का प्रसार हुआ। आजकल बौद्ध धर्म राजधर्म घोषित होने के उपरान्त भी सनातन हिन्दू धर्म का पूरा-पूरा सम्मान होता है। प्राचीन राजधानी अयोध्या में राम-उद्यान के मध्य में एक विशाल प्रशाल में क्षीर सागर में शेषशय्या पर विश्राम करते हुए लक्ष्मीनारायण का सुन्दर चित्र है। नवीन राजधानी बैंकाक (प्राचीन नाम रत्नकोशीन्द्र) से चिंगमाई जाते हुए मार्ग में लवपुरी तथा विष्णुलोक नगर भी पड़ते हैं। इसी प्रकार स्वर्गपुरी, इन्द्रपुरी नामक नगर भी सनातन हिन्दू धर्म से ओत-प्रोत हैं। भगवान् विष्णु के वाहन गरुड मुख्य रूप से राज्यचिह्न पर अंकित है। बैंकाक की एक विशाल नृत्यशाला के बाहर गणेशजी की विशालकाय मूर्ति स्थापित है। अनेक बौद्ध मंदिरों में भी गणेशजी की मूर्ति देखने को मिलती है। बैंकाक में ही एक प्राचीन हिन्दू मंदिर है जिसके प्रधान पुजारी राजगुरु पद पर आसीन हैं। उन्हें वामदेव कहा जाता है।

इस मंदिर में गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पृथ्वी, चन्द्रमा, दुर्गा आदि देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय में भी गणेशजी की दो मूर्तियाँ हैं। यहाँ लक्ष्मीजी की एक मूर्ति है, जो एकदम भारतीय शैली की है। सुखोदय के खण्डहरों में भी गणेशजी की मूर्तियाँ पाई गई हैं। इसके संग्रहालय में विष्णु, हरिहर, शेषशायी विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, गरुड, नाग आदि की मूर्तियाँ भी रखी हुई हैं। अयोध्या के संग्रहालय के बाहर विशालकाय त्रिमूर्ति के दर्शन होते हैं। अन्दर गणेश, विश्वकर्मा आदि की मूर्तियाँ हैं।

इस देश में कभी विष्णु भगवान् का भी बहुत अधिक प्रभाव था। यहाँ के राष्ट्रीय संग्रहालय में विष्णु की अनेक कलात्मक तथा विशाल मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं।

संस्कृति-विहार, रांची के संग्रहालय में थाईदेश के श्रीकृष्ण-लीला के चित्र एवं श्रीकृष्ण-सुभद्रा संवाद के प्राचीन भित्तिचित्र संगृहीत हैं।

कम्बुज—कम्बोडिया का प्राचीन नाम कम्बुज है। 10वीं शताब्दी तक सारा इन्डो-चाइना ही कम्बुज कहलाता था। इतना ही नहीं, स्याम और मलाया भी उस समय कम्बुज के ही अन्तर्गत थे। कहते हैं कि किसी समय भारत के राजर्षि कम्बु ने यहाँ वन्य-जनों को भारतीय संस्कार दिया तथा यहाँ के राजवंश की स्थापना की थी। इन्हीं कम्बु ऋषि के नाम पर इस देश का नाम कम्बुज हुआ और शैवधर्म यहाँ पर राजधर्म बना।

अंकुरवट संसार का सबसे बड़ा विष्णुमंदिर है। अंकोरवट का विशाल देवालय 12वीं शताब्दी में निर्मित हुआ था। इसके चारों ओर एक खाई है जो 700 फुट चौड़ी है। उसे पार करने के लिए नागों के आकार के खम्भों पर 36 फुट चौड़ा एक पुल बना है। चारों कोनों पर 180 फुट ऊंचे मीनार हैं। मंदिर की दीवारों पर हिन्दू देवी-देवताओं तथा रामायण, महाभारत व पुराणों की अनेक कथाओं से सम्बन्धित लगभग 30 चित्र भी अंकित हैं। किसी समय इस मंदिर में भगवान् विष्णु की उपासना होती थी। बाद में बौद्धों ने इसे अपना विहार बना लिया था।

एक शिलालेख से ज्ञात हुआ है कि बारहवीं शताब्दी में वेदों के परम विद्वान् हृषिकेश नाम के एक पंडित कम्बुज गए थे। तत्कालीन नरेश श्री जयवर्मा सप्तम ने उन्हें 'श्री जयप्रधान' की उपाधि से अलंकृत कर अपना राज-पुरोहित बनाया था। वहाँ उन्होंने एक शैव कन्या श्री प्रभा से अपना विवाह भी कर लिया था।

कुछ शिलालेखों में सुश्रुत, मनुस्मृति तथा हरिवंश पुराण का भी उल्लेख मिलता है।

संस्कृति विहार, रांची के संग्रहालय में कम्बुज से प्राप्त गोवर्धनधारी श्रीकृष्ण की मूर्ति, हरिहर की मूर्ति तथा गरुड आदि की मूर्तियों का सुन्दर संग्रह है।

योगेश्वर श्रीकृष्ण का राजनीतिक तत्त्व दर्शन

जिन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द की, विश्व के करोड़ों व्यक्ति आदर्श पुरुष, पूर्ण पुरुष तथा परम पुरुष के रूप में अर्चना करते हैं उन विश्वगुरु श्रीकृष्ण का राष्ट्रपुरुष के रूप में चिन्तन सम्भवतः कुछ संकुचित भाव दिखाई देगा। किन्तु प्रस्तुत लेख का ऐसा कोई आशय नहीं है। जिस प्रकार से सहस्त्ररश्मि-सूर्य की किसी एक रश्मि का अध्ययन भी सूर्य को समझने में सहायक होता है उसी प्रकार इन पूर्ण पुरुष श्रीकृष्ण के जीवन की राष्ट्रीय रश्मि का अध्ययन भी कम महत्त्व का नहीं। वरन् अभी तक उन योगेश्वर कृष्ण की इसी जीवन रश्मि का कम से कम अध्ययन किया गया है।

भगवान् श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व इतना अनन्तमुखी है कि यह कहना कठिन है कि वे क्या नहीं थे। योग-योगेश्वर, ज्ञानदाता, सिद्ध साधक, मित्र, सारथि, सेवक, रक्षक, राष्ट्रनिर्माता, आदर्श कर्मयोगी, आदर्श प्रेमी, आदर्श शासक, सफल राजनीतिज्ञ, शूरशिरोमणि, मानवता के गौरव, लोकनायक, लोकशिक्षक—वे सभी कुछ थे। पिछले 5000 वर्षों की गम्भीर गवेषणा के पश्चात् भी अभी तक उन के बहुरंगी जीवन की अनेकानेक अज्ञात दिशायें खोजनी शेष हैं।

एक पारसी विद्वान् प्रो. फीरीज कावसजी दावर भगवान् कृष्ण की महात्मा ईसा से तुलना करते हुए लिखते हैं—'...महात्मा ईसा इतिहास के उन बहुमूल्य रत्नों में से हैं जिनके लिए हम लोगों की सदा आदरसूचक विशेषणों का प्रयोग करने की इच्छा होती है, परन्तु क्या वे रणभूमि में जाकर युद्ध कर सकते थे या राजदूत का कार्य कर सकते थे? हमारी यह धारणा है कि समस्त संसार के इतिहास में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ, जिसका कार्यक्षेत्र इतना अधिक व्यापक रहा हो, जितना श्रीकृष्ण का था। उन्होंने अपने कीर्तिमय जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में जो-जो लोकोत्तर कार्य किए, वे गत पांच सहस्र वर्षों से अटक से लेकर कटक तक और काश्मीर से कन्याकुमारी तक ही नहीं, प्रत्युत सारे जगत् के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में गाए जाते हैं।

वे विद्वान् पारसी प्रोफेसर आगे लिखते हैं—बालक, विद्यार्थी, मित्र, प्रेमी, योद्धा, शासक, राजपूत, तत्त्वदर्शी, योगेश्वर, सिद्धपुरुष तथा ईश्वर के पूर्णावतार

आदि सारे ही रूपों में उनके जीवन की अद्वितीय महानता दृष्टिगोचर होती है। किसी कवि का कथन है कि कीर्तिमय जीवन की एक कार्यसंकुल घड़ी भी कीर्ति रहित जीवन के एक युग से भी श्रेष्ठ है, फिर श्रीकृष्ण ने तो एक सौ पचीस वर्ष की लम्बी एवं पूर्ण आयु प्राप्त की और उसके प्रत्येक घंटे में उन्होंने ऐसे-ऐसे कार्य किए जिनसे उनका नाम तथा यश, सदा के लिए अमर हो गया।

गीता तत्त्व

गीता तत्त्व ही भगवान् कृष्ण का जीवन तत्त्व है। भगवान् स्वयं कहते हैं, 'गीता मे हृदयम् पार्थ' अर्थात् गीता ही मेरा हृदय है। गीता उपनिषदों का सार है पर सार मात्र ही नहीं है उससे अधिक भी कुछ है। उपनिषदों का ब्रह्मज्ञान जगत् के कोलाहल से दूर अरण्यों या वनों में गाया गया। परमशान्ति में बैठे हुए गुरु और शिष्य वार्तालाप कर रहे हैं। पर समस्या है धर्म के उस परम तत्त्व को जीवन में कैसे साकार किया जाए? प्रायः लोग कह देते हैं कि परमार्थ की बातें परमार्थ के लिए है उनका यथार्थ जीवन में, व्यवहार में कोई स्थान नहीं। यह ऐसा ही, जैसा पश्चिम के बड़े-बड़े विज्ञानवेत्ता गिरजाघर में जाकर प्रभु ईसा का सन्देश गाते हैं—'सभी जीवों से वैसे ही प्रेम करो जैसे अपने आप से करते हो।' और गिरजे से बाहर अपनी प्रयोगशाला में जाकर मानवता के नाश के लिए अणुबम तथा उद्जन बम तैयार करते हैं। पूछने पर वे तर्क देते हैं कि धर्म और राजनीति का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है, विज्ञान का क्षेत्र और धर्म का क्षेत्र भिन्न-भिन्न है। ऊपर से ठीक प्रतीत होते हुए भी इस कथन में कितना धोखा छिपा हुआ है यह हिरोशिमा और नागासाकी के उजड़े हुए भू-प्रदेश से पूछियेगा, कथनी और करनी के इसी अन्तर ने मानवता का नाश कर रखा है। आदर्श और यथार्थ के बीच की इसी खाई में मानवता गिर रही है। गीता ने ऊँचे से ऊँचे ब्रह्मज्ञान को जीवन की भीषण से भीषण परिस्थिति पर लागू करके दिखाया है जब १८ अक्षौहिणी सेनाएं मरने-मारने को उद्यत है और रक्त की नदियाँ बहाना चाहती है वहाँ भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को ब्रह्मज्ञान का महान् उपदेश दिया पर शान्ति लाभ के लिए वन में भागने भी नहीं दिया।

प्रवृत्ति और निवृत्ति

क्रान्ति के तुमुल नाद के भीतर भी भगवान् ने अर्जुन को शांति का उपदेश दिया। और भीतर की शांति को बिना खोए ही बाहर से भीषणतम युद्ध तक कर सकना ही जीवन की वह अद्भुत कला है जो, गीता ने सिखाई है।

इसमें प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का संयोग है बाहर से प्रवृत्त रहते हुए भी अन्तर से सर्वथा निर्लिप्त रहना ही गीता का मर्म है। श्रीकृष्ण का जीवन संदेश है—आदर्श को व्यवहार में उतारो, परमार्थ को यथार्थ में साकार करो, संन्यास को कर्म में

विकसित होने दो। जीवन एक इकाई है तथा धर्म राजनीति के दो अलग-अलग क्षेत्र नहीं हैं। दोनों क्षेत्र एक हैं।

भगवान् का आदेश है—'मामनुस्मर युध्य च।' मुझे याद भी करता रह और युद्ध भी करता जा।

स्वदेश और स्वधर्म

देश और धर्म को भिन्न-भिन्न मानने से देश की सेवा धर्मपूर्वक नहीं हो सकेगी और धर्म हमें इहलोक में उत्थान न दे सकेगा। यदि धर्म से राजनीतिक बेहोशी फैले तो उसका क्या लाभ है और यदि धर्म साधना से देश लुट जाए तो वह साधना किस काम की? शास्त्र का मत है—'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस्सिद्धि स धर्मः।' जिससे इहलोक और परलोक दोनों सुधरे वही धर्म है अतः भारत में राजनीति धर्म का एक अंग है इसे राजधर्म कहा है। बिना धर्म के राजनीति वेश्या के समान हो जाएगी। अतः भगवान् कृष्ण जहाँ धर्मरक्षक हैं वहाँ राष्ट्र निर्माता भी हैं।

धर्म युद्ध

भगवान् कृष्ण ने गीता शास्त्र में धर्म युद्ध की कल्पना बड़ी सुन्दर दी है। राग-द्वेष से हीन होकर, सुख-दुःख को समान जानकर मित्र-शत्रु में भेद न करते हुए, अपने मन की शांति को स्थिर रखते हुए, भगवान् को निरन्तर स्मरण करते हुए निष्काम कर्म भाव से धर्म रक्षा के लिए यदि युद्ध किया जाय तो वह धर्म युद्ध है। सच्चा क्षत्रिय युद्ध धर्म के लिए ही लड़ता है, किसी स्वार्थ सिद्धि के लिए या प्रतिकार भावना से नहीं। शांति निश्चय ही उत्तम है किन्तु यदि अन्तर की शांति कायम रख कर असंग भाव से युद्ध किया जाय तो वह भी महान् है। जो धर्म की पुकार पर युद्ध से भागे, वह कायर है।

क्षत्रिय कसाई या बूचड़ नहीं है वह धर्म की रक्षा के लिए शस्त्र धारण करता है। यदि युद्ध के साथ योग का संयोग न हो, यदि शक्ति के साथ शील का समन्वय न हो तो बल का दुरुपयोग प्रारम्भ हो जायगा।

श्रीकृष्ण के 'मामनुस्मर युद्ध च' में ध्वनि है कि मनुष्य निरन्तर भगवान् को भी स्मरण रखे तथा जीवन के संघर्ष में भी लगा रहे। इसी भाव को गुरु गोविंदसिंह ने प्रकट किया है—

धन्य जिओ तिंह को जग में, मुख ते हरि चित्त में युद्ध विचारे।

यज्ञमय जीवन

भगवान् का अपना जीवन भी यज्ञमय था, वे स्वयं कहते हैं—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र, लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

अर्थात् यज्ञ के सिवा शेष सभी कर्म बन्धन में डालने वाले हैं। श्रीकृष्ण का कोई भी स्वार्थ शेष नहीं था, कोई कामना नहीं थी। फिर भी वे इतने कर्मशील थे। उन का समस्त जीवन 'इदं न मम्' की यज्ञ भावना से ओत-प्रोत था। राष्ट्र के प्रत्येक बच्चे को इसी भावना से कार्य करना चाहिए, स्वार्थ एवं अहंकार राष्ट्रोत्थान के लिए घातक है।

राज्य के उद्देश्य

श्रीकृष्ण की घोषणा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।

यह एक राजकीय घोषणा भी है। सज्जनों की रक्षा करें, दुष्टों को दण्ड देवें।

समता

समता का आश्वासन देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनिचैवं श्वपाके च पण्डिताः सम दर्शिनः।।

अच्छा शासक सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करे।

वह पशुओं तथा छोटे जीवों का भी संरक्षण करे। किसी प्रकार का पक्षपात न करे।

अनन्य राष्ट्रभक्ति

भगवान् की प्रतिज्ञा है—

अनन्यश्चिन्तयतो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्।।

जो लोग अनन्य भाव से मुझ राष्ट्र पुरुष का चिन्तन करते हैं मैं उन के योगक्षेम का वहन करता हूँ। अनन्य भाव से राष्ट्र चिन्तन करने का अर्थ है राष्ट्र को अपने से अन्य, अपने से भिन्न न माने। अर्थात् अपना हित और राष्ट्र हित को भिन्न न समझे। मैं राष्ट्र का अंग हूँ तथा राष्ट्र के हित में ही मेरा हित है, ऐसा मानकर राष्ट्र सेवा करने से ही राष्ट्र का उद्धार हो सकता है। यदि देश के मुसलमान तथा ईसाई, भारत के हित में ही अपना हित मानें तथा राष्ट्र को पराया न समझें तो क्या वे राष्ट्र के साथ कभी द्रोह कर सकते हैं?

विराट् रूप दर्शन

श्रीकृष्ण राष्ट्र पुरुष हैं। विराट् रूप में उन्होंने अर्जुन को संगठित राष्ट्र की

विराट् शक्ति का रूप दिखाया है। विराट् रूप के सामने एक व्यक्ति अति लघु है। व्यक्ति समझता है मैं सब कुछ कर रहा हूँ, किन्तु विराट् राष्ट्र के दर्शन करने पर वह लज्जित हो जाता है। भगवान् उसे कहते हैं—राष्ट्र के इस विराट् रूप के मुख में सारे पापी पहले ही भस्म होने के लिए जा रहे हैं, 'निमित्त मात्रं भव सव्य साचिन्', हे अर्जुन, तू निमित्त मात्र बन जा।

राष्ट्र शरणागति

राष्ट्र की शरण में आने वालों को आश्वासन देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—

चाहे बड़े से बड़ा दुराचारी भी मुझ राष्ट्रपुरुष की शरण में आ जावे, उसकी रक्षा होगी।

'**न मे भक्तः प्रणश्यति**'

अर्थात् राष्ट्रभक्त का कभी नाश नहीं होगा।

वे आह्वान करते हुए मानव से कहते हैं—

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

इसमें ध्वनि है राष्ट्रैकं शरणं व्रज—हे मानव, तू सर्व धर्मों को त्याग कर एक मुझ राष्ट्रपुरुष की शरण में आ जा। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूंगा।

बल तथा बुद्धि

बल तथा बुद्धि के संयोग से ही राष्ट्र का कल्याण है—

यत्र योगेश्वरो कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयोर्भूति ध्रुवा नीति र्मतिर्मम।।

जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं तथा जहाँ धनुर्धारी अर्जुन है, जहाँ शस्त्र और शास्त्र का, युद्ध और यज्ञ का, बल एवं बुद्धि का समन्वय है, वहीं विजय है, वैभव है तथा यश है। राष्ट्रोत्थान के लिए जगद्‌गुरु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराज का यह मुक्ति मन्त्र क्या हम सुनेंगे।



गीता सिर्फ व्यक्तियों या राष्ट्र विशेष का नहीं बल्कि समग्र विश्व के संकट निवारण हेतु अपरिहार्य ग्रंथ है।

—इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण



भारत का अमर अध्यात्म संगीत : गीता

युग बीत गये। युग बीत रहे हैं तथा युग बीतते चले जायेंगे किन्तु भारत की मृत्युंजय संस्कृति भूत, भविष्य तथा वर्तमान के लिए चुनौती बनी हुई आज तक जीवित है। नश्वर पर अधिष्ठित संस्कृति नश्वर है, अविनाशी पर निर्मित संस्कृति सदा अविनश्वर है। बड़े-बड़े साम्राज्य ध्वस्त हो गए, बड़ी-बड़ी विश्वव्यापी संस्कृतियाँ धूलि-धूसरित हो गईं। जातियों का उत्थान-पतन एक अतीत की धूमिल कहानी मात्र रह गया है किन्तु दुर्भाग्य की सब से अधिक ठोकरें खाकर भी भारत आज तक जीवित है। इसका कारण क्या है? इसका कारण है भारतीय संस्कृति की वह संजीवनी जिसे विश्व श्रीमद्-भगवद्गीता के नाम से पहचानता है।

भगवद्गीता का अर्थ है भगवान् का गायन। यह भारत का दिव्य आध्यात्मिक संगीत है जिसने पतन के गर्त में पड़ी हुई तथा मृत्यु के किनारे पर खड़ी हुई इस जाति को भी मृत्युंजय बना दिया है।

गीता की पुस्तक खोलिए। प्रथम अध्याय है अर्जुन विषाद योग अर्थात् अर्जुन के दुःख का वर्णन। यह जीव का रोना है। जीव कर्तव्याकर्तव्य को न पहचान कर दुःख पाता है तथा अर्जुन के समान रोता है। वह महाबली होते हुए भी 'अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्' है, उसके नेत्र अश्रुपूरित हैं। वह रोदन करके कहता है—'गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्वक्चैव परिदह्यते'—मेरे हाथ से गाण्डीव गिर रहा है तथा मेरी त्वचा जलती है। पुनः उसकी स्वीकारोक्ति है—'न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।' विश्व का वह लासानी वीर कहता है कि मैं खड़ा तक नहीं हो सकता हूँ तथा मेरा मन चक्कर खा रहा है, वह वीरश्रेष्ठ हाथ में भीख का कटोरा लेकर भीख मांगने को तैयार है। इस सारे रोदन का उपचार क्या है? उपचार बड़ा ऐतिहासिक है—भगवद्गीत, भगवान् का गाना। जीव का रोना त्याग कर भगवान् का गाना गाओ, यही भगवद्गीता का सन्देश सार है।

जिस महान् ऐतिहासिक दिन कुरुक्षेत्र की रणस्थली में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द वासुदेव नारायण, अन्तर्यामी परमेश्वर के श्रीमुख से यह महान् आध्यात्मिक संगीत निःसृत हुआ होगा वह दिन कितना धन्य हुआ होगा। यह

पंजाब की धरती कितनी सौभाग्यशालिनी है कि इस पर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-चिह्न अंकित हुए तथा उन्होंने वह महान् गीतिका गाई जो पिछले 5000 वर्षों से विश्व के अन्तरिक्ष में जीवन-ज्योति बनकर चमक रही है, हर गिरे हुए को उठाने के लिए, हर भटके हुए को राह दिखाने के लिए, हर पतित का उद्धार करने के लिए, मर्त्यों को अमरत्व की सुधा पिलाने के लिए वह भगवद्गीतारूपी ज्ञान-भक्ति-कर्म की त्रिपथगा भागीरथी मानव मात्र को उबारने के लिए निरन्तर बह रही है।

गीता ज्ञान का तेजपुंज सूर्य है, ज्ञान के आगार उपनिषदों का साक्षात् सारतत्त्व है, उपनिषद् रूपी गउओं का दुहा हुआ दुग्धामृत है, किंवा उनका नवनीत है। इसके विषय में जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् विलियम वान हम्बोल्ट का कथन है—'गीता विश्व की किसी भी ज्ञात भाषा में लिखी हुई आध्यात्मिक गीतिकाओं में सब से अधिक सुन्दर, किंवा सच्चे अर्थों में एकमात्र दार्शनिक गीतिका है।

आधुनिक काल में अमरीका में थोरो जैसे महापुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर गीता रूपी अमृत के झरने में स्नान करते थे। उन्हीं के महान् शिष्य इमर्सन भी गीता के अनन्य-भक्त हुए। इंग्लैण्ड में भी गीता के अध्यात्म संगीत के रसिक कार्लाइल जैसे तत्त्वद्रष्टा हुए। इमर्सन एक बार कार्लाइल से मिलने गए। वहाँ कार्लाइल ने इमर्सन से कुछ सौगात या उपहारस्वरूप कोई वस्तु मांगी। क्या यह प्रत्येक भारतीय के लिए महान् गौरव की बात नहीं है कि दोनों ने एक-दूसरे को भगवद्गीता की प्रति भेंट की। दोनों ने स्वीकार किया कि उनके कंगाल देश में उससे अधिक मूल्यवान कोई निधि नहीं है।

सत्यं शिवं सुन्दरम् की त्रिपथगा भागीरथी गीता माता को, हम अपने अन्तस्तल में स्थान देवें जिससे हम अन्तर्बाह्य पवित्र हो जावें तथा हृदय वीणा के तार-तार से यह अमरता की अमर रागिनी गूंजने लगे।

गीता का शाश्वत दर्शन कभी भी रचे गये सबसे स्पष्ट व सर्वांगपूर्ण सारांशों में से एक है। इसलिये न केवल भारतीयों के, अपितु सम्पूर्ण मानव-जाति के लिये इसका स्थायी मूल्य है। सम्भवतः भगवद्गीता शाश्वत दर्शन का सबसे अच्छा सुसंगत आध्यात्मिक विवरण है।

—जीवविज्ञानी, अलडुअस हक्सले

गीता का विदेशों में प्रभाव

गीता विश्व के अध्यात्म रत्नों की वह अलौकिक रत्न मंजूषा है जिसमें एक विचार रत्न की पावन प्रभा पर विश्व का धार्मिक एवं दार्शनिक वाङ्मय न्योछावर हो जाय। गीता के विषय में स्वयं गीतोपदेश में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—

'गीता मे 'हृदयंपार्थ' गीता मे 'शास्त्रमुत्तमम्'

अर्थात् हे पार्थ! गीता मेरा सर्वोत्तम शास्त्र है, इतना ही नहीं यह मेरा साक्षात् हृदय ही है।

कुरुक्षेत्र की रणस्थली में अर्जुन के धर्मयुद्ध से लेकर आधुनिक काल में लोकमान्य तिलक, खुदीराम बोस, सुभाषचन्द्र बोस आदि के स्वातंत्र्य युद्ध तक, भगवान् वेद व्यास के वेदांत दर्शन से लेकर योगीराज अरविन्द के योग दर्शन तक, शंकराचार्य जैसे भारतीय महामनीषी से लेकर आल्डुअस हक्सले (Alduas Haxley) जैसे पाश्चात्य विचारक तक गीता के शाश्वत संदेश ने सभी कर्म वीरों, धर्म संस्थापकों एवं विचार सृष्टाओं को चमत्कृत किया है। भारतवासियों की गीता भक्ति तो स्वाभाविक एवं सर्वविदित ही है किन्तु विधर्मियों एवं विदेशियों की गीता के प्रति अलौकिक निष्ठा गीता की सार्वभौमिकता का अकाट्य प्रमाण है।

लंका, बर्मा, थाईदेश, कम्बुज, लवदेश, मलाया, सिंगापुर आदि देशों में सर्वत्र भगवान श्रीकृष्ण के मंदिर तथा गीता के सत्तर भाषाओं में अनुवाद प्रचारित हैं। कम्बुज में संसार का सबसे बड़ा हिन्दू मंदिर है अंकुटबार।

प्रसिद्ध दर्शन विद्वान श्री कैखुशस जे. दस्तूर का कथन है—गीता केवल हिन्दुओं का ही नहीं अपितु संसार की जातियों की धर्म पुस्तक है। गीता की एक-एक पंक्ति, एक-एक शब्द पवित्र विचारों से सुरक्षित है। आध्यात्मिकता इसमें एक छोर से दूसरे छोर तक स्वर्ण सूत्र की तरह ओत-प्रोत है। गीता को यदि दिव्य ज्ञान की खान कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

प्रख्यात फारसी चिन्तक प्रोफेसर फिरोज कावस जी दावर ने लिखा है—यह भी दिखता है कि अन्ततोगत्वा विज्ञान धर्म का बाधक न होकर साधक ही होगा

और धर्मोन्माद के स्थान पर वास्तविक विश्वधर्म की प्रतिष्ठा होगी जिसमें सर्वधर्म समान रूप से योग देंगे। उस समय मानव मात्र के लिये जब एक अखिल विश्व धर्म की प्राण प्रतिष्ठा होने लगेगी तब हमें एक मात्र गीता का ही सहारा रह जाएगा क्योंकि यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि विश्व धर्म के मौलिक प्राण तत्त्वों का जितना सुन्दर समावेश गीता में है उतना किसी भी अन्य धर्म के किसी भी धर्म ग्रंथ में नहीं है।

सम्राट् अकबर के काल में प्रसिद्ध फारसी विद्वान फैजी ने गीता का अनुवाद किया। लाहौर के ख्वाजा दिलमुहम्मद ने गीता का उर्दू पद्य में अनुवाद करते हुए लिखा—

मुसीबत से सबको बचाती है गीता
पायमे सदाकत सुनाती है गीता
जो गिरते हैं गलती से इस सरजमीं पर
उठाकर फलक पर बिठाती है गीता।

चार्ल्स विल्किज ने गीता का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद किया जिसकी भूमिका में गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने लिखा—भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के ध्वस्त हो जाने के उपरान्त भी भारतीय दर्शन के अमर गायक पूजे जाते रहेंगे। इस गीता से अमरीका का इमर्सन तथा उनके गुरु तुल्य मित्र थोरो बड़े प्रभावित हुए। थोरो कहता है—मैं प्रतिदिन प्रातःकाल गीता के अमृतकुण्ड में स्नान करता हूँ। इमर्सन जब इंग्लैण्ड में कार्लायल से मिलने गया तो दोनों ने परस्पर एक-दूसरे को गीता भेंट की।

इंदोनीजिया की स्वाधीनता के अवसर पर लोगों ने हाथों में गीता लेकर स्वाधीनता की रक्षा की शपथ ली थी तथा राष्ट्रपति सुकर्ण ने कहा—हममें अर्जुन का बल और कृष्ण की बुद्धि है।

जापान में शिन्तो धर्म पर भी गीता का प्रभाव है। विगत महायुद्ध में जापान का एक पनडुब्बी चालक जब युद्ध में बलिदान हेतु जा रहा था तो एक भारतीय नेता के पूछने पर उसने जेब से गीता की पोथी निकाल कर दिखाई और बताया—यह अमरता का रक्षा कवच है। जब तक हम इसे जानते हैं, हम मृत्यु नाम की किसी वस्तु को जानते नहीं।

चीन के कन्फ्यूशियस धर्म एवं ताओ धर्म पर भी गीता के सत्-विवेक तथा शासक की कार्यक्षमता के समन्वय का संदेश है। चीन में प्रथम शती में महायान बौद्ध धर्म के साथ गीता भी पहुँची तथा चीनी भाषा में अनूदित हुई।

जर्मन दार्शनिक शोपनहावर तथा काण्ट के दर्शन पर गीता के कर्तव्यवाद या निष्काम कर्मयोग की स्पष्ट छाप है। अमरीका के क्रिस्टोफर ईश्रवुड को गीता के

तत्त्वज्ञान ने आत्महत्या से बचाया तथा हक्सले ने गीता को सच्चे अर्थ में 'शाश्वत दर्शन' की संज्ञा दी। यह एक अत्यंत विस्मयकारी तथ्य है कि 16 जुलाई 1945 को (जल) अमरीका के न्यू मैक्सिको रेगिस्तान में प्रथम अणुबम का परीक्षण किया जा रहा था तो आविष्कारक राबर्ट ओपेनहीमर ने ज्यों ही आकाश में अनन्त सूर्यों के प्रकाश के समान प्रचण्ड अग्नि ज्वालाओं को बम के विस्फोट के साथ ही देखा तो उन्हें गीता के विराट रूप दर्शन की स्मृति हो आई और वे जेब से गीता निकालकर एकादश अध्याय का श्लोक गाने लगे—

दिवि सूर्य-सहस्रस्य, भवेद्-युग-पदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्-भासस्-तस्य महात्मनः11/12

कालोऽस्मि लोकक्षय कृत्प्रवृद्धो
लोकान् समाहर्तु-मिह प्रवृत्तः।11/32

मुझे भूगोल पढ़ाने में भिन्न-भिन्न देशों की जानकारी करनी पड़ती थी। उसके साथ उन देशों का परिचय भी करना पड़ता था। इस तरह मैं भारत से परिचित हुआ। मैं जैसे-जैसे उसका अध्ययन करता गया वैसे-वैसे उसके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती गयी....मैंने उसके तत्त्वचिंतन में रुचि ली। गीता और उपनिषदों का फ्रेंच भाषा में जो अनुवाद छपा, मैंने उसे पढ़ा और उसने मुझे आजीवन विस्मृत रखा।

—जर्मन दार्शनिक, कांट

गीता की विविध क्षेत्रों में प्रतिष्ठा

विश्वमनीषा का श्रेष्ठ सम्पद् श्रीमद्भगवत्गीता भारतीय शाश्वत संस्कृति का निर्यास (रस, नवनीत)। जगत् के सारस्वत समाज को भारत का श्रेष्ठ दान यह सद्ग्रंथ। बहुदिन पहले प्रतीचच्भूखण्डे अंग्रेज मनीषी कार्लाइल मार्किन मनीषी इमर्सन के साथ साक्षात् के समय गीता उपहार के माध्यम से परस्पर सौहार्द को सुदृढ़ करते हैं। विश्व के समुन्नतषटत्रिःशत भाषा में इस ग्रंथ का प्रायः तीन सहस्र संस्करण हुआ है। विश्व के इतिहास में यथार्थ गण साहित्य यह गीता है। पण्डित-मूर्ख, धनी-दरिद्र, स्त्री-पुरुष, शिक्षक-सैनिक, कर्मी-व्यवसायी, छात्र-श्रमिक, त्यागी-भोगी सकल के पास इस ग्रंथ का आवेदन (या वक्तव्य) है। निर्जन गुहावासी, निष्किन्चन तपस्वी से राजप्रासादवासी-धनी, सर्व कर्म-त्यागी साधु से लेकर सदा कर्मनिष्ठ राजनीतिक नेता पर्यन्त सभी जीवन का पाथेय इस गीता से प्राप्त करते हैं। गीता मानव समाज का ज्ञान-कल्पतरु। इसलिए युग-युग से गीता के ऊपर रचित हुआ है असंख्य भाष्य। मनीषी द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर गीता को बोलते हैं भारत के कुटीर का बिना तेल का प्रदीप। महात्मा गांधी के मत में गीता है शान्ति एवं शक्तिप्रदायनी माता। अध्यात्म जगत् में गीता की साधना सुविदित है। किन्तु देश के राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम एवं आन्तर्जातिक मैत्री साधना में गीता की अनन्य असाधारण भूमिका अविस्मरणीय है। गीता के निष्काम कर्मयोग, आत्म समर्पण योग आत्मतत्त्व एवं स्थितप्रज्ञत्व के आदर्श के द्वारा भारत के स्वाधीनता संग्राम में मुक्तियोद्धाओं को उद्बुद्ध किया था। भारत का प्रायः सकल विप्लव का अवश्य पाठ्यग्रंथ था यह गीता। पुनः अहिंस्र संग्रामीगण को भी गीता की वाणी से मिली है आदर्श की प्रेरणा। सहिंस्र एवं अहिंस्र भारत के मुक्तिसंग्राम के उभय पथ के पथिकों के पथ का पार्थक्य रहने से भी लक्ष्य एक, वैसी पाथेय भी एक और वह था श्रीमद्भगवत्गीता? तभी विप्लवी योगी ऋषि अरविन्द, चरमपंथी नेता लोकमान्य तिलक, पुनः अहिंसा संग्रामी महात्मा गांधी, भूदान आन्दोलन के प्रवर्तक निरीह विनोबा भावे गीता का प्रवचन के लिये समुत्सुक रचना की है। स्व-स्व आदर्श के आलोक में गीता का विशाल भाष्य। बाल्यावस्था से गीताध्यायी—महासंग्रामी नेताजी सुभाषचन्द्र कांग्रेस के नेता के हिसाब से कारागार में सहकर्मी तरुण गणों

को नित्य गीता पाठ के लिये प्रवर्तना देते हैं। पुनः आजाद हिन्द फौज के महानायक रूप में रणक्षेत्र में बमवर्षण के बीच में पाकेट में एक छोटी गीता आलेख्यधृता माता कालिका एवं तुलसी मालिका। खुदीराम, कन्हाईलाल, विनय-बादल-दिनेश, प्रफुल्ल प्रभृति दधीचि के दल में एवं जेल में गीता का नित्यपाठ करते थे। अवेस्ता, बाइबिल, कुरान, त्रिपिटक आदि इस प्रकार प्रत्यक्षरूप से देश के राष्ट्रीय मुक्तिसंग्राम में मरणपण सैनिकों को प्रबुद्ध किया या नहीं, जानता नहीं। लेकिन इतना बोलता हूँ कि गीता सिर्फ धर्म ग्रंथ नहीं है—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा चतुवर्ग तथा सामग्रिक जीवन पथ का समयसारणी तथा टाइम-टेबुल सकल पथ के यात्रियों का अपरिहार्य ग्रंथ। सिर्फ व्यक्तियों या राष्ट्र विशेष का नहीं, समग्र विश्व का संकट निरसन के लिए अपरिहार्य ग्रंथ है। विश्व शांति एवं विश्व कल्याण की दृष्टि से राष्ट्रसंघ (U.N.O.) की प्रतिष्ठा। उसके उद्देश्य को लेकर राष्ट्रसंघ के प्राक्तन सेक्रेटरी जेनरल स्वर्गत दयाग् हयामारशिल्ड् बोलते हैं—फलाकांक्षा करके कर्म करने की अपेक्षा फलाशा त्याग कर कर्म करना बहुत अच्छा है। यह उपदेश सभी युग में सभी दर्शन की चूडान्त कथा है। राष्ट्रसंघ के प्रबल प्रचेष्टा से हम लोग यदि गीता का यह उपदेश अनुसरण कर चल सके तभी हम लोग सुखी होंगे।

The Bhagavad Gita echoes on experience of all ages and all philosophies when it says-work with anxiety about results is far inferior to work without such anxiety, an calm self-surrender. These words expressed deep faith and we will be happy if we can make that faith ours in all our efforts.

जर्मनी के आणविक वैज्ञानिक ओपेनहाइमर ने गीता का श्लोक पाठ करके लब्ध आणविक गवेषणा की घोषणा की। नोबेल पुरस्कार प्राप्त जीव विज्ञानी आल्डुअस हक्सले ने गीता का अनुवाद किया है और स्वदेशी गणितज्ञ नारलीकर ने गीता कंठस्थ की है। प्रत्येक मनुष्य जीवन संग्राम में, रणक्लान्त सैनिक, अर्जुन के समान विषाद ग्रस्त। विषाद से मुक्ति सभी का काम्य है। अर्जुन को उपलक्ष करके शाश्वतकाल के निखिल मानव को विषाद के हाथ से मुक्ति तथा मोक्ष के लिए योग मार्ग का भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में प्रदर्शन किया है।



मेरी अन्तरिक्ष यात्रा में मेरे पास रखी गीता निरन्तर मेरा उत्साह बढ़ाती रही, तभी में 195 दिनों तक अंतरिक्ष में रहने का विश्व कीर्तिमान स्थापित कर सकी।

—सुनीता विलियम्स



राजा परीक्षित और श्रीमद्भागवत

काल निरन्तर गतिमान है। काल प्रवाह रूप से चलता रहता है, इसकी गति रुक नहीं सकती। राजा परीक्षित ने अपने पुण्य के प्रभाव से काल की गति को स्थिर करना चाहा, रोकना चाहा पर वह स्वयं काल के प्रभाव में आ गया और उसे शाप ग्रस्त होना पड़ा कि सातवें दिन उसे मृत्यु को वरण करना है। हम जानते हैं सत् के प्रभाव से मृत परीक्षित को जीवित किया भगवान् कृष्ण ने। अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से परीक्षित की भगवान ने रक्षा की। माता अनसूया ने अपने पातिव्रत्य के सत्य के प्रभाव से ब्रह्मा-विष्णु-महेश को 6-6 माह के बालक बना दिया। अपने पातिव्रत्य एवं सत्य के प्रभाव से सावित्री ने अपने पति सत्यवान के प्राण वापस लौटा लिये।

तो भागवत् कथा काल के पार, मृत्यु के पार कालातीत अवस्था को कैसे प्राप्त कर सकते हैं, उसकी कथा है। हमारी दैनिक चर्या कैसी हो जो हमें मृत्यु के पार अमरत्व की ओर ले जाए। हमारी कौन-कौन-सी चर्याएं ऐसी हैं जो हमें हर बार मृत्यु का ग्रास बनकर 84 लाख के फेरे लगवाती रहती है।

मृत्यु से छूटने का उपाय क्या है? महाराज परीक्षित ने अपनी अन्तिम अवस्था जानकर भारतीय परम्परा के अनुसार राज्य का उत्तरदायित्व पुत्र को सौंपकर राज्यभार से मुक्त होकर वानप्रस्थ ले लिया। वन का रास्ता ले लिया। भारतीय परम्परा में यौवन में विषय ऐषणा और प्रौढ़ावस्था, वार्धक्य में मुनिव्रत ले लेते हैं, पुत्र को राज्य की जिम्मेदारी सौंपकर वानप्रस्थ ले लेते हैं? क्योंकि हमारा धर्म योगमय है, धर्म करते-करते हम योग के अधिकारी बनते हैं। हमारा धर्म ही ऐसा है जो व्यवहार को भी परमार्थ में, कर्म को धर्म में, धर्म को योग में परिणत कर देता है। अतः पुत्र के बड़ा, योग्य, दायित्व सम्हालने योग्य हो जाने पर स्वयं वानप्रस्थ ले लेते हैं।

पर इस्लाम-ईसाइयत में धर्म भोगमय है। धर्म करते हैं भोग प्राप्त करने के लिये। इहलोक में भी और परलोक में भी। इसलिये जीवन पर्यन्त विषयों से चिपके रहते हैं, इसलिये पिता को मारकर पुत्र के गद्दी पाने की परम्परा इस्लाम में पाते हैं। यही स्थिति खलीफाओं की रही है, इसी क्रम में मुहम्मद पैगम्बर के वंश को

समाप्त कर दिया। इनके यहां धर्म भोग के लिये, राजनीति के लिये है, धर्म के नाम पर अपने साम्राज्य का विस्तार करते हैं ताकि अधिक-से-अधिक भोग प्राप्त हो। यही स्थिति इस्लाम और ईसाइयत की है।

अतः भारत को भारत रखना है तो परीक्षित के मार्ग को अपनायें और यदि भारत को गारद करना है, नष्ट करना है, पथ च्युत करना है तो औरंगजेब का मार्ग अपनाएँ जिसने अपने पिता को कैद करके पानी के लिये भी तरसा कर मारा और अपने सभी भाइयों की हत्या करके गद्दी पायी।

राजा परीक्षित मृत्यु को सुधारने के लिये, मृत्यु को अमृत में परिणत करने के लिये, मधुर बनाने के लिये, सुन्दर बनाने के लिये वह संसार से विरक्त हो गया। गंगा के तट पर आ गया। हमारी जीवनचर्या की रचना ही इस प्रकार की गयी है कि मृत्यु प्रभु मिलन की वेला बन जाए। आत्ममिलन की, महामुक्ति की, महाआनन्द की वेला बन जाए। क्योंकि हमारे जीवन की अन्तिम परीक्षा, अन्तिम कसौटी यही है, इसके लिये हम सारा जीवन सचेष्ट रहते हैं कि मृत्यु परमानन्द की घड़ी, मोक्ष की घड़ी बन जाए, इसमें चूक न हो जाय। इसलिये ही जीवनभर सत्संग, साधु संगत, सत्पुरुष संग, भगवद् भजन, लोकसेवा व सदाचरण करते हैं।

सातवें दिन मृत्यु जानकर राजा परीक्षित गंगा तट पर आ गये। राजा परीक्षित धर्मपरायण एवं यशस्वी राजा होने से यह खबर तुरंत सारे राज्य में फैल गयी। परीक्षित धर्मात्मा राजा था। हम जानते हैं यथा राजा तथा प्रजा। राजा ही कालस्य कारणम्। माता-पिता सदाचारी हैं तो पुत्र भी सदाचारी होता है, लक्ष्मण के प्रश्न पर राम का उत्तर कि रावण की असुरता माता कैकसी के प्रभाव से है। प्रह्लाद का भक्त होना माता कयाधु के प्रभाव से। वैसे राजा के धर्मात्मा होने से प्रजा भी सत की पथिक होती है। सर्वोच्च सत्ता भ्रष्ट है तो सारा देश नष्ट है। स्वाधीन भारत में कांग्रेस भ्रष्टता और भाई-भतीजावाद नेहरू से प्रारम्भ होता है। नेहरू के कारण कांग्रेस एक दरबारी पार्टी एक परिवार की पार्टी बनकर रह गयी है। देश के पतन के मूल में नेहरू परिवार है, उससे ही सारी पार्टियों में भ्रष्टता फैली। जनता में भ्रष्टता फैली। भ्रष्टता झरने की तरह है जिसका मूल ऊपर होता है संकरी होती है जो नीचे फैलती जाती है। परीक्षित धार्मिक राजा थे, उसके कारण पूरा देश सत्प्रधान बना हुआ था। अतः सभी ऋषि-महर्षि उनके शापग्रस्त होने से दुःखी हुए। यह समाचार पाकर सारे ऋषि-महर्षि भी गंगा तट पर पहुँच गये। वे सब सोचने लगे कि क्या उपाय किया जाए कि राजा परीक्षित का परम कल्याण साधित हो। उस समय सबकी भावना बनती है, यदि इस समय शुकदेव कहीं से आ जाएं तो बड़ा अच्छा हो। और संयोगवशात शुकदेव घूमते-घूमते वहाँ आ पहुँचे, पर समस्या थी कि वे रुकते नहीं थे, सिर्फ भिक्षा के लिये गाँव में जाते थे, फिर वापस चल पड़ते थे। एक स्थान पर स्थिर रूप से रुकते नहीं थे।

उनको रोकना बड़ा कठिन, एक समस्या थी। तब नारदजी ने एक युक्ति लगाई और उन्हें बताया कि राजा परीक्षित की सातवें दिन तक्षक के डसने से मृत्यु हो जायेगी। मृत्यु सुधर जाए इसलिये आप भागवत् कथा सुनायें। शुकदेव कहते हैं, इतने सारे ऋषि-महर्षि आये हुए हैं, यह कार्य उनके द्वारा हो जाएगा। तब नारदजी ने शुकदेवजी से कहा, आप एक प्रश्न का समाधान करके जाओ। शुकदेव ने कहा, पूछो। नारदजी ने कहा, एक अंधा चलते-चलते कुएँ में गिर पड़ा। एक आँख वाले की दृष्टि भी गयी, पर उसने उसे न तो कुएँ से सावधान किया और न कुएँ में गिर पड़ने पर उसकी निकलने में सहायता की। उसमें दोष किसका है? शुकदेवजी ने कहा, अंधा तो कुएँ को न जानता था और देख भी नहीं सकता था। आँख वाले ने देखा था तो आँख वाले का ही दोष है। तब नारदजी ने कहा, परीक्षित भी तो अंधा है क्योंकि भागवत् कथा भगवत् चरित्र नहीं जानता। अज्ञानी अंधा ही होता है, वह अभी कुएँ में गिरा हुआ है। आप ज्ञानी, आँख वाले होकर भी उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। इस प्रकार नारदजी ने उनको युक्ति से रोक लिया और कथा कहने के लिये राजी कर लिया।

अतः संत चलते-फिरते तीर्थ होते हैं। ज्ञान के भण्डार हैं, भगवान् की कथा सुनाते हैं।

मृत्यु को सुधारने के लिये भागवत कथा है। संसार सागर से तारकर अमृत तत्त्व की, आत्म तत्त्व की प्राप्ति के लिये भागवत कथा है। संसार से विरक्त होकर भगवत तत्त्व की प्राप्ति के लिये हृदय मचल उठे इसके लिये भागवत् कथा है।

भागवत कथा के समाप्ति पर आने पर भी जब परीक्षित में ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं हुई तो शुकदेवजी ने यह कथा सुनाई—एक राजा शिकार खेलने जंगल में गया। साथियों से बिछुड़कर रास्ता भटक गया रात हो गयी। तब जंगल में कहीं आश्रय मिल जाए ऐसा विचार कर रहा था तभी एक कुटिया नजर आयी, जिससे दीपक का प्रकाश आ रहा था। वह वहीं आश्रय पाने के लिये पहुँचा। रातभर ठहरने देने के लिये विनती करने लगा। कुटिया चर्मकार की थी जो मृत पशुओं के चमड़े का कार्य करता था। उसने कहा, आपके योग्य मेरे पास व्यवस्था नहीं है। आप राजा हैं मैं तो सामान्य चर्मकार हूँ। तो उसने कहा, आपके पास जो व्यवस्था है उसी में मुझे संतोष है। तब उसने चमड़ा बिछाकर उनके लिये शय्या बना दी, ठंड लगने पर कुछ चमड़ा ओढ़ने के लिये दे दिया जिसमें पशुओं का कच्चा ताजा मांस लगा हुआ था। और कोई साधन व उपाय न होने के कारण लाचारी में स्वीकार कर लिया। चमड़े से दुर्गन्ध भी भयानक रूप से आ रही थी। राजा सोच रहा था किसी तरह रात कट जाए और उसी अवस्था में राजा को नींद आ गयी। प्रातः होने पर भी राजा करवट लेकर और ठण्ड लगने पर और चमड़े को ओढ़कर सोना चाहता है। सूर्य की रश्मियाँ उस पर पड़ रही हैं फिर भी वह उठना नहीं चाहता है।

तब चर्मकार ने आवाज लगाई हे मुसाफिर! उठो, हे राजा! उठो, सूर्योदय हो गया है। जैसे-जैसे उठाता वह और अधिक चमड़े से मुँह ढककर सो जाता है, बस थोड़ी देर और बस थोड़ी देर और, इस तरह सुबह से संध्या हो गई पर वह उठने का नाम ही न लेवे? इस तरह जीवन की सुबह से जीवन की संध्या उपस्थित हो गई पर मुसाफिर उठने का नाम ही नहीं लेता। यह कथा सुनते-सुनते राजा परीक्षित कह उठा, ऐसा कौन दुर्भागी अधम राजा होगा जो अपने राजपाट में लौटने की इच्छा न करके मूर्ख चर्मकार के घर में उस अवस्थाविशेष में पड़ा रहना पसन्द करेगा। शुकदेव ने कहा, वह अधम राजा तुम स्वयं ही हो। शरीर में चमड़ा लगा हुआ है जिसमें ताजा कच्चा मांस लगा हुआ है। सन्त पुकार रहे हैं, शास्त्र पुकार रहे हैं, भगवान पुकार रहे हैं, तुम चर्मकार नहीं राजा हो। उठो, सारे ब्रह्माण्ड का वैभव तुम्हारा है, उठो। जागो मेरे पास आओ तुम मेरे पुत्र हो। मेरे सारे वैभव के उत्तराधिकारी हो। उठो, मेरे पास आओ। इस अधम शरीर के अन्तर्गत आत्मराजा विराजमान है, जो अपनी महिमा को भूलकर इस दुर्गन्धयुक्त शरीर में, मल-मूत्र, पीप, रक्त अस्थि मांस में निमज्जित पड़ा है। अपने आत्म स्वरूप, शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वरूप को भूलकर शरीर से उठना ही नहीं चाहता है। आत्मा इस शरीर में अतिथि रूप में है, न इसके आगमन का समय निश्चित है और न जाने का समय निश्चित है। इसके बावजूद भी हम शरीर के भोगों में, संसार के राग-रंग में ही निमग्न हैं। जब-जब सद्गुरु सन्त, आत्म उद्धारार्थ हमें जगाने का प्रयास करते हैं, वैसे-वैसे हम संसार और शरीर को और अधिक जकड़ कर पकड़ते हैं। कठोपनिषद् का उद्घोष है, जब तक अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेते तब तक उठो, जागो और आगे बढ़ते रहो। कठोपनिषद् कहता है, जिसने इस जीवन काल में आत्मा को नहीं जान लिया वह स्वयं का हत्यारा है, आत्महत्यारा है। यह कथा सुनने के पश्चात् राजा परीक्षित को संसार से वैराग्य होता है और प्रभु मिलन की मचल उत्पन्न हो जाती है। अब कभी भी तक्षक आकर के डस लेवे मेरे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ, शरीर का मालिक हूँ। मैं असंख्य शरीरों को धारण कर सकता हूँ। हम अभी शरीर, इन्द्रिय, मन विषयों के दास हैं। हमें शरीर-इन्द्रिय-मन-विषयों का मालिक बनना है। अब मैं शरीर, इन्द्रिय-मन-बुद्धि-विषय का दास नहीं मालिक बनूंगा।

जटायु का प्रसंग—

भगवान् कहते हैं, मैं तुम्हें जीवनदान देता हूँ जटायु अस्वीकार करता है। क्योंकि बहुत सुकृत और यत्न करने पर भी अन्त समय में भगवान् का स्मरण नहीं आता। और यहां तो स्वयं भगवान् राम उपस्थित हैं।

हमारे मन में परम्परा से यह बात बैठी हुई है कि मृत्यु प्रभु मिलन की वेला है, मोक्ष का महापर्व है, अतः उसमें भय नहीं परमानन्द होना चाहिये।

अब जिसके सुकृत हैं उनकी मृत्यु के समय स्वयं भगवान् उपस्थित हैं। ऐसा ही सौभाग्यशाली जटायु है। वह जीवनदान न लेकर भगवान् के सम्मुख भगवान् की गोद में ही अपना प्राण त्याग करना श्रेयष्कर समझकर प्रभु राम की गोद में प्राण त्यागता है। तब भगवान् राम जटायु को अपने पिता राजा दशरथ की गति देते समय जटायु से कहते हैं, तुम्हारी पिताजी से भेंट होगी तो सीता अपहरण की बात मत बताना नहीं। उन्हें दुःख होगा। जटायु कहता है, यह बात छुपी थोड़ी ही रहेगी उनसे। भगवान् राम कहते हैं, रावण स्वयं अपने कुल-कुटुम्ब सहित पहुँचकर अपने मुख से बताएगा। दशरथ जब उनसे पूछेंगे, यहाँ कैसे आना हुआ? तब वह स्वयं अपने मुख से बताएगा और सीता अपहरण का क्या परिणाम उसे भुगतना पड़ा। वह स्वयं बताएगा कि उसके कुल-कुटुम्ब में अब कोई शेष नहीं बचा।

बालि को भी भगवान् जीवनदान देना चाहते हैं, पर वह अस्वीकार करता है, क्योंकि भगवान् के सम्मुख प्राण त्यागने का अवसर खोना नहीं चाहता।

शबरी अपने जीवन को कृत-कृत्य जानकर, जीवन का प्रयोजन पूरा हो गया भगवान् के सम्मुख अग्नि में प्रवेशकर अपना शरीर त्याग देती है।

कुमारिल भट्ट भी अपना प्रायश्चित्त छोड़कर वापस जीवन-दान लेना अस्वीकार कर देते हैं शंकराचार्यजी से। हां, आपका प्रयोजन मेरे शिष्य मंडन मिश्र से पूरा हो जायेगा—ऐसे ही ज्ञानेश्वर महाराज, शंकराचार्यजी, स्वामी विवेकानन्द, गुरु नानक देव, कबीर आदि ही नहीं अनेक संतों ने जीवित समाधि ली है। भागवत् मृत्यु सुधारती है मुख्यतः और गीता पूरे जीवन को सुधारती है। भागवत मरने की कला, गीता जीवन जीने की कला सिखलाती है।



फ्रेंच विद्वान् डुपरो ने गीता का फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद किया। गीता का 700 श्लोक का छोटा-सा काव्य जिसने भोगवाद से पीड़ित पश्चिम की आत्मा को अत्यधिक शान्ति प्रदान की है। दार्शनिक श्लेगल इसको देखकर स्तम्भित हो गया। वह कहता है, 'यूरोप का सर्वोच्च दर्शन, उसका बौद्धिक अध्यात्मवाद जो यूनानी दार्शनिकों से प्रारम्भ हुआ, प्राच्य अध्यात्मवाद के अनन्त प्रकाश एवं प्रखर तेज के सम्मुख ऐसा प्रतीत होता है जैसे मध्याह्न के प्रखर सूर्य के दिव्य प्रकाश के भरपूर वेग के सम्मुख एक मन्द-सी चिनगारी हो जो धीरे-धीरे टिमटिमा रही है और किसी भी समय बुझ सकती है।



श्रीमद्भागवत

जगत गुरु भगवान् वेदव्यास नारायण के अंश से प्रकट होने के कारण अंशावतार हैं। वेद विश्व का प्रथम ज्ञानालोक है। उस पावन प्रकाश को विधिवत् सम्पादित करके मानवता की भावी पीढ़ियों के लिये सुलभ बनाने वाले भगवान् वेदव्यास विश्व के प्रथम और महानतम ज्ञान सम्पादक हैं। विश्व के सर्वोच्च दर्शन वेदान्त के द्रष्टा होने से विश्व के प्रथम कोटि के महानतम दार्शनिक हैं। महाभारत जैसे ग्रंथराज के रचयिता होने से विश्व के प्रथम विश्वकोश निर्माता हैं। पुराणकर्ता के रूप में विश्व के प्राचीनतम पुराण इतिहासकार हैं, विश्व के सबसे बड़े महाकाव्य महाभारत के सृष्टा कवि के रूप में वे विश्व के महानतम महाकाव्यकार हैं।

स्वयं नारायण के अंश से आविर्भूत, इतने बड़े ज्ञान भण्डार के सम्पादक, रचयिता, काव्यकार, इतिहासकार होने पर भी दुःखी हैं। कृत-कृत्यता की, धन्य-धन्यता की, पूर्ण-पूर्णता की अनुभूति नहीं है। विषण्ण हैं। मन में शान्ति और समाधान नहीं है, हताश, निराश से हैं। व्यक्तिगत दृष्टि से नहीं लोक कल्याण लोक संग्रह की दृष्टि से।

वृहदारण्यक उपनिषद् में यही स्थिति देवर्षि नारद की पाते हैं। नारदजी ब्रह्मज्ञानी सनत्कुमारजी से कहते हैं—मैं धरती से लेकर आकाश तक की समस्त विद्याओं को जानता हूँ किन्तु फिर भी मन में शान्ति नहीं है। कृत-कृत्यता की, पूर्णता की अनुभूति नहीं है। इस पर सनत्कुमारजी पूछते हैं, हे नारदजी! क्या आपने स्वयं को, जिसके प्रकाश से सबको जाना जाता है, उस जानने वाले को जान लिया है? या नहीं? उसको जाने बिना सारा ज्ञान अज्ञान है, सब ज्ञान व्यर्थ है। मस्तिष्क का बोझ बढ़ाने वाला और मन की उलझनों को बढ़ाने वाला होगा। नारदजी व्यक्तिगत शान्ति के लिये दुःखी थे और वेदव्यासजी लोकहित की दृष्टि से दुःखी थे।

वेदव्यासजी की व्यथा को देवर्षि नारद समझ गये। उन्होंने सुझाया कि यह ठीक है कि आपने सिद्धान्त ग्रन्थों का निर्माण किया पर आपने उन सिद्धान्तों

को अपने जीवन में विनियोग कर उसके अनुसार जीवन को जीकर सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देते हुए व उसके अनुसार जीवन को ढालने वाले जीवन-चरित को आपने प्रकाशित नहीं किया कि जिससे जनसाधारण को प्रेरणा मिल सके। जनसाधारण में इतनी मेधा शक्ति नहीं होती कि सिद्धान्तों को, वेदान्त के विचार को हृदयंगम कर सके। वह तो अपने से श्रेष्ठतर जनों, महापुरुषों के आचरण को देखकर ही उससे कुछ हृदयंगम कर सकती है और उस दृष्टि से चलने का प्रयास कर सकती है। उनको अपना प्रेरणा पुरुष, आदर्श पुरुष मानकर उनके अनुसार चलने का प्रयास कर सकती है। अतः आप भगवान् की लीलाओं का, भक्तों की कथाओं का, चरित्र का वर्णन करें जिसके सभी अधिकारी होते हैं।

पर आपने अभी तक सिद्धान्त ग्रन्थों की रचना की है जो ज्ञान प्रधान हैं। उसके सभी अधिकारी नहीं। उसके लिये विशेष योग्यता की अपेक्षा है—यथा साधन चतुष्टय, शम, दम, तितिक्षा, उपरति आदि षड्सम्पत्ति आवश्यक है। अतः ये उच्च अधिकारियों के लिये है सर्वसामान्य जनता के लिये नहीं।

पर भगवान् की लीलाओं, भक्तों के चरित्र प्रधान ग्रन्थों के सभी अधिकारी हैं। इसमें साधन चतुष्टय, षड् सम्पत्ति आदि अनिवार्य नहीं है। भक्ति के सभी अधिकारी हैं आबाल वृद्ध, चाहे वह ज्ञानी हो या अज्ञानी हो, स्त्री हो या पुरुष, छात्र हो या शिक्षक, धनी हो या निर्धन, राजा-रंक, मालिक-नौकर सभी अधिकारी हैं। सभी के लिये इसमें पाथेय है, वह अपना पाथेय प्राप्त कर पूर्णता की अनुभूति कर सकता है, अपने विकास की यात्रा कर पूर्णता की अनुभूति कर सकता है।

एक भक्त पूछता है, प्रह्लाद-ध्रुव की उम्र ही क्या थी, कुब्जा में सुन्दरता ही क्या थी, धर्म व्याध का व्यवसाय कैसा था, विदुर का जन्म कैसा था, विदुरानी और शबरी का ज्ञान ही कैसा था जो केले के छिलके और जूठे बेर भगवान् को खिलाते हैं। कंस के पिता उग्रसेन का पौरुष या पराक्रम ही क्या था, गोप बाल-बालिकाओं के पास सम्पदा ही क्या थी? पर भगवान् ने सबको अपनाया। अतः आप भक्ति प्रधान अवतारों के लीला चरित, महापुरुषों के संतों के चरित्रों का वर्णन करें जिनके श्रवण मात्र से जीवन शुद्ध होता है, पवित्र होता है। मस्तक श्रद्धा से स्वतः झुक जाता है और उस पर चलने की मन की प्रवृत्ति हो जाती है।

इस प्रकार भागवत हमारे देश की महान धार्मिक परम्परा का ग्रन्थ है। हम जिन महान सन्तों, ऋषियों, राजर्षियों, महापुरुषों, अवतारों के वंशधर हैं, उत्तराधिकारी हैं उस पावन परम्परा का ग्रन्थ है। यह हमारे पूर्वजों की कीर्ति गाथा, उनके तपमय जीवन को, धर्ममय, सत्यमय, परदुःखकातरमय जीवन पक्ष को, चार जीवनमूल्यों के आधार पर जीने वाले जीवन और उसके फल को उजागर करता है।

अतः भागवत हमारे जीवन की कसौटी का ग्रन्थ है। भागवत श्रवण के साथ हमें अपनी प्रतिदिन की चर्या को टटोलने वाला ग्रन्थ है। जो अपने जीवन को सटीक पथ पर ले जाना चाहता है, अपने जीवन की त्रुटियों को सुधारना चाहता है, श्रेष्ठ जीवनमूल्यों या चारों जीवनमूल्यों के अनुसार अपना जीवन चलाकर अपना जीवन सफल बनाना चाहता है, पूर्णता प्राप्त करना चाहता है, नर से नारायण की यात्रा करना चाहता है, अल्पचेता से महानचेता बनना चाहता है, अल्प सुख से महान सुख पाना चाहता है, उनके लिये भागवत् ग्रन्थ है।

भागवत् हमारे चित्त का दर्पण है, इसमें किसी और (अन्य) की कथा नहीं है, स्वयं अपनी कथा है। आज के इस व्यस्त जीवन में दूसरों की कथा पढ़ने की फ़ुरसत किसे है? और फिर स्वयं की कथा, पीड़ा व्यथा क्या कम है?

भागवत् की कथा दिशा-निर्देशक है कि हमारे जीवन की कथा किस ओर चल रही है—ध्रुव प्रह्लाद, राम, कृष्ण, पाण्डवों की ओर या राजा उत्तानपाद, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, कंस, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, दुःशासन की ओर, सुनीति की ओर या सुरुचि की ओर, धुंधकारी की ओर, या सीता-सावित्री दमयन्ती की ओर या कैकसी, शूर्पणखा, मंथरा, कैकेयी की ओर, माता कुन्ती की ओर या गान्धारी की ओर जो अविवेकपूर्वक आँखों पर पट्टी बाँध लेती है। पति-पत्नी एक-दूसरे को सहारा देने वाले, एक-दूसरे की रक्षा करने वाले, एक-दूसरे के पूरक हैं, पूर्णता प्रदान करने वाले हैं। अब यदि पति एक विषय में असहाय हो जाए, और पत्नी भी उस विषय में असहायता ओढ़ लेवे तो जीवनसाथी बनने का प्रयोजन ही सिद्ध नहीं होता। पति में कोई दुर्बलता है। अपूर्णता, अपंगता है तो पत्नी भी उसे अपने ऊपर ओढ़ लेवे तो यह विवेक का परिचय कतई नहीं है। अतः विचारें अपना पति अंधा है तो क्या पत्नी को अपनी आँखें फोड़ लेनी चाहिये या पति की आँख बनना चाहिये। पति बहरा है तो उसका कान, यदि लंगड़ा है तो उसकी टाँग बनना चाहिये या अपनी ही टाँग तोड़कर अपंग एवं बोझ बन जाना चाहिये। बहरी बन जाना चाहिये। यदि अपनी आँख खोलकर रखती तो पति को, पुत्रों को, सत्य का पथ दिखला सकती थी। आशीर्वाद देती है कि विजय उसी की होगी जिधर धर्म है, पर उस पर भी दृढ़ नहीं रह पाती, स्थिर नहीं रह पाती। सारे युद्ध के मूल में दुर्योधन की हठधर्मिता है, पर उसे शाप देकर दण्डित करने बजाय उसे अजेय वज्र का बना देती है अपने पुण्य को खर्च करके और शाप भगवान् को देती है। दुर्योधन-दुःशासन-धृतराष्ट्र गांधारी की उपज है, देन हैं। धृतराष्ट्र तो अंधा है, केवल शारीरिक दृष्टि से नहीं, सब दृष्टियों से और गांधारी अंधत्व को ओढ़ लेती है।

भागवत पुरुषार्थ चतुष्टय का साधन ग्रन्थ है। पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष आते हैं। धर्म हमारा नैतिक आदर्श है, काम हमारा मनोवैज्ञानिक

आदर्श है, अर्थ हमारा आर्थिक एवं राजनैतिक आदर्श है, और मोक्ष हमारा अध्यात्मिक आदर्श है। इन चारों के अन्दर जीवन के सभी जीवन-मूल्य आ जाते हैं। जो चारों पुरुषार्थों का आधार लेकर चलता है वह सद्गृहस्थ है। जो केवल अर्थ और काम को लेकर चलता है वह पामर जीव है। जो धर्म और मोक्ष को लेकर चलता है वह साधक है और जो केवल मोक्ष को लेकर चलता है वह सिद्ध है। धर्म और अर्थ में टक्कर होने से धर्म को वरीयता दी जानी चाहिये जैसा कि हम प्रभु राम-भरत आदि के जीवन में देखते हैं। अर्थ और काम में टक्कर होने से अर्थ को वरीयता दी जानी चाहिये, जैसा कि विप्लवी बंधुओं में, स्वाधीनता सैनानियों में देख सकते हैं, जिन्होंने अपनी व्यक्तिगत कामना को त्यागकर देश की जनता के सामूहिक हित के लिये अपना उत्सर्ग कर दिया। और जब धर्म और मोक्ष में टक्कर हो तो मोक्ष को वरीयता दी जानी चाहिये जैसा हम स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, रामकृष्ण परमहंस, अरविन्द घोष आदि में पाते हैं। और स्वयं भगवान् गीता में कहते हैं जब आत्मा की, भगवान की, मोक्ष की पुकार आ जाए तो सभी धर्मों को त्यागकर प्रभु की शरणागति स्वीकारनी चाहिये जैसा कि गोप बालाएं कृष्ण के वेणु वादन पर करती हैं। जो केवल अर्थ और काम को लेकर चलते हैं, प्रारम्भ में तो लगता है वे फल-फूल रहे हैं, पर अन्त में मूल सहित नष्ट हो जाते हैं। असुर व विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ इसी आधार समाप्त हो गये। भारत की अमरता का रहस्य चारों पुरुषार्थों को लेकर चलना ही है।

भारत में दर्शन पश्चिम की तरह बुद्धि विलास या बुद्धि का कुतूहल या जिज्ञासा निवृत्ति मात्र नहीं है, वरन् सत्य की साक्षात् उपलब्धि, अनुभूति से है और उस सत्य के अनुसार जीवन जीने में है। इसलिये पश्चिम की तरह भारत ने Armed chair दार्शनिकों को जन्म नहीं दिया जो जूते का फीता टूटते ही या थोड़ा-सा कष्ट आते ही सारा दर्शन भूल जाते हैं। उनके यहाँ दर्शन का जीवन से अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है और न जन-जीवन से ही और हमारे यहाँ दर्शन स्वयं के जीवन और जनजीवन से सम्बन्धित है। पश्चिम में सारे जीवन के अध्ययन मनन से जिस सत्य या दर्शन की उपलब्धि वे करते हैं वहाँ भारत की अपढ़ से अपढ़ माता भी उससे ज्यादा जानती है। दर्शन के प्रायः सभी सिद्धान्तों को परम्परा से, उत्तराधिकार क्रम स्वतः उपलब्ध हो जाता है। क्योंकि भारत का तत्त्वचिंतक वर्ग पाश्चात्य दार्शनिकों की भाँति जीवन से, जन-जीवन से पृथक् होकर आकाश में विचरण नहीं करता। उसका स्थान आज की भाँति विश्वविद्यालय नहीं है। भारत के ज्ञानी पुरुषों ने तो जीवन का रहस्य प्राप्त करने के अपने सभी प्रयत्नों का निचोड़ प्रजा के घर-घर में पहुँचाने की व्यवस्था कर दी है, तथा ऐसा करने में परिव्राजक संस्था, संन्यासियों, भिक्षुओं, कथानायकों, आचार्यों एवं वानप्रस्थियों का विशेष योगदान है। यह भी हमारी अमरता का आधार

रहा है। विधर्मियों, शत्रुओं द्वारा हमारे ग्रन्थ, पुस्तकालय, मठ, मन्दिर नष्ट किये जाने पर भी हमारा धर्म लुप्त नहीं हुआ, क्योंकि हमारे प्रचारकों के द्वारा ये सब बातें जन-जन के हृदय में बैठा दी गयी।

एक बार अकबर ने अपने भ्रमण काल में देखा कि एक व्यक्ति को केन्द्र करके अनेक व्यक्ति बैठे हैं किसी ग्रंथ का पारायण चल रहा है। निकट जाने पर पता चला महाभारत की कथा चल रही है। तब उसे भारत की अमरता का रहस्य समझ में आया। हमारे देश, धर्म, जाति की अमरता का आधार भी यही ग्रन्थ है। इस्लाम के इतने बर्बर आक्रमण, अत्याचार के बाद भी यह देश, धर्म, संस्कृति कैसे टिकी हुई है। इस देश की संस्कृति की अमरता का कवच उसे समझ में आया। तब उसने सोचा क्यों न मैं भी अमर हो जाऊँ। मुगल वंश और दीन-इलाही धर्म भी। अतः स्वयं को ही अमर बनाने के लिये उसने अपने ऊपर भी महाभारत कथा रचवानी चाही उसकी आज्ञा दी और एक लाख रुपया और एक साल का समय दिया। पर एक साल के बाद भी जब कोई समाचार नहीं मिला तो लेखक को बुलाया। लेखक ने कहा, कथा लगभग पूरी हो गयी है पर एक जगह अटक गई है। द्रौपदी के पाँच पति थे। जोधा बाई के एक पति तो आप हैं, एक सम्भवतः मानसिंह, अन्य तीन के नाम बता देवें। इससे अकबर ने चिढ़कर कथा लिखना बन्द करने की आज्ञा दे दी।

भागवत जनसाधारण का ही ग्रन्थ नहीं परमहंसों की संहिता है जो समाधि भाषा में लिखी गयी है। अतः भागवत के कुछ प्रसंग ऐसे भी हैं, जिन्हें समझने के लिये हमें अपना स्तर परमहंसों के, गोप बालाओं के समान ले जाना होगा। भागवत सरल होने के साथ-साथ समाधि भाषा में होने से कठिनतम भी है। इसका विवेचन विद्वानों की विद्वत्ता की कसौटी भी माना जाता है। सामान्यतः हम स्वयं के स्तर के आधार पर किसी तथ्य को समझने के अभ्यासी (आदी) होते हैं। हमारे जीवन में जीवन मापक यन्त्र लगा हुआ है। सबसे नीचे लंगोटी का स्थान, उससे ऊपर पेट का उसके ऊपर हृदय का (भाव का) उसके ऊपर गला (गायन का) उसके ऊपर मस्तिष्क (बुद्धि का), उसके ऊपर ब्रह्मरंध्र का। फिर किसी भी ग्रन्थ पर विचार करने के पूर्व श्रोता-वक्ता का स्तर क्या है और प्रसंग क्या है, कथा किस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कही जा रही है और कथा का फल क्या है इन सब पर विचार आवश्यक है।

भागवत रस परोस कौन रहा है भागवत में। जिसने स्वयं की अनुभूति से जिसे अमृत बना दिया है वह व्यासनन्दन शुक। भागवत का यह वक्ता एक अद्‌भुत वीतरागी वटु है। गर्भ से ही पिता के शिष्यों को पढ़ाने लगे थे शुकदेव। लेकिन दुनिया का मायाजाल देखना तक नहीं चाहते थे, इसलिये गर्भ में ही बने रहे। साधना-भजन निर्विघ्न हो इसके लिये माँ के गर्भ से अच्छी गुहा नहीं हो सकती। उनके वैराग्य की कई कथाएँ प्रचलित है। कहते हैं आखिरकार भगवान् वेद व्यास के ही अनुरोध

पर, Term and condition तय हो जाने पर कि माया का स्पर्श भी उन्हें नहीं होगा तब व्यापने का प्रश्न ही कहाँ है? इस आश्वासन के पश्चात् ही शुकदेव गर्भ से बाहर आकर धरातल को स्पर्श करते हैं। जन्म होते ही शुक सीधे वन की तरफ दौड़ पड़े। कोई भी संस्कार मानव समाज की विशेषता को स्वीकारे बिना ही निकल पड़े। वे जन्मजात शुद्ध, निर्विकार थे। अतः किसी संस्कार की उन्हें आवश्यकता नहीं थी। अतः नाल कटवाने का प्रथम संस्कार भी न करवाते हुए, नाल को कंधे पर डालकर भाग निकले। किसलिये? विश्वात्मैक्यता में अधिक गहरी पैठ हो इसलिये वह पलायन था। पीछे-पीछे व्याकुल हो व्यास हे पुत्र! हे पुत्र! पुकारते जा रहे हैं। लेकिन लौकिक पुकार सुनना शुकदेव कहाँ से जानेंगे? वे तो मौन में लीन थे। फिर पिता को समझाने का कार्य वृक्षों ने किया। वृक्षों ने प्रतिध्वनि दी कि कौन किसका पिता है, कौन किसका पुत्र है। जब अर्जुन अभिमन्यु वध से दुःखी होकर उससे मिलने स्वर्ग पहुँचता है तब अभिमन्यु अपने पिता अर्जुन को पहचान ही नहीं पाता है। अर्जुन ने जब सारा परिचय दिया तब अभिमन्यु पूछता है आप कितने नंबर के पिता हैं। न जाने कितने जन्म लेकर आप और मैं एक-दूसरे के पिता-पुत्र बन चुके हैं। फिर महाभारत कहता है, आपका पुत्र विश्व कल्याण के लिये जा रहा है उसे वापस न बुलायें। शुकदेवजी के विश्व कल्याण में आपका भी कल्याण निहित है।

शुकदेवजी सदैव षोड्श वर्ष के दिखते हैं। अहर्निश ध्यानस्थ रहने के कारण वे हर समय सहज समाधि में रहते हैं। हरये नमः अहर्निश मन्त्र जप के बल पर सनक, सनन्दन, सनतकुमार और सनातन सदैव पाँच वर्ष के बने रहते हैं। अखण्ड ध्यान एवं मन्त्र जप के बल पर शुकदेव, सनत्कुमार आदि काल पर विजय पाने में समर्थ सिद्ध हुए हैं। समाधिवस्था में काल रुक जाता है, स्थिर बना रहता है—

सुमरसि भजसि निरन्तर मोही,
काल कर्म ब्यापे नाहि तोही।

गोस्वामीजी के मानस में कहा गया है—

फिरत सदा माया के फेरे,
काल कर्म स्वभाव गुण घेरे।

अर्थात् जीव काल, कर्म स्वभाव एवं गुण के फंदे में पड़कर माया से प्रेरित होकर सदा संसार में भटकता रहता है। अर्थात् काल कर्म के द्वार से स्वभाव और गुण जीव को प्रभावित करते रहते हैं। काल और कर्म पर विजय प्राप्त करने पर मानव तीनों गुण, स्वभाव, माया पर विजय प्राप्त कर सकता है। प्रतिक्षण भगवद् स्मरण से काल व्याप नहीं सकता—

सुमरसि भजसि निरन्तर मोही,
काल कर्म ब्यापे नाहि तोही।

सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन सदा 'हरये नमः' का जप करते रहते हैं। नाम का आलम्बन लेकर भगवत तत्त्व का स्मरण करते रहते हैं। उसके प्रभाव से सदा पाँच वर्ष के ही बने रहते हैं। वैसे ही शुकदेवजी पर भी माया, काल, गुण, कर्म का कोई प्रभाव नहीं फलतः जन्म से ही षोडश वर्ष के बने रहते हैं। उन्हें स्त्री-पुरुष के भेद का भी ज्ञान नहीं है। ऐसे शुकदेव भागवत के प्रवक्ता हैं।

यही शुक लोक जीवन में लौट आता है, तो श्रीकृष्ण के जीवन सौन्दर्य से अभिभूत होकर ही। यह कैसे हुआ? वेद-उपनिषदों के गहरे अध्ययन के बाद भी वेद व्यास बेचैन थे, तब महामुनि नारदजी की सलाह से उन्होंने भगवान् की लीला का गुणवर्णन करके शान्ति पायी। लेकिन उन लीलाओं के रस-रहस्य को पचाकर उसे अमृतमय रूप में लोक जीवन के उद्धार के लिये वितरित करे ऐसा शुक के समान दूसरा कौन अधिकारी हो सकता था? व्यास देव के शिष्य श्रीमद्भागवत के एक श्लोक को गाते-गाते वन में गये और गुफा में ध्यानस्थ शुकदेव के कान में पड़े। उसे सुनने लगे। श्रीकृष्ण के अद्भुत चरित्र को सुनकर वे आकृष्ट हुए और अपने पिता वेदव्यासजी की शरण में कृष्ण चरित्र का पान करने के लिये पहुँचे।

श्रोता हैं राजा परीक्षित जिन पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग होने पर स्वयं भगवान् कृष्ण ने गर्भ में पहुँचकर रक्षा की तथा प्रसूति गृह में राजा परीक्षित को जीवनदान दिया। जिन्हें गर्भ से ही भगवान् की कृपा एवं दर्शन प्राप्त हो, जन्म के समय में प्रसूति गृह में भगवान का सान्निध्य प्राप्त है अतः जिसे गर्भ काल से ही भगवान् का दर्शन प्राप्त है, प्रारम्भ से ही जिसके कोमल चित्त पर भगवान् की छाप अंकित हो गई। जन्म लेने के 36 वर्ष तक जिनको भगवान् का दर्शन प्राप्त हो, फिर शाप मिलते ही सर्वत्याग करके मोक्ष के व्रती हो गये।

श्रीकृष्ण के देहावसान के साथ ही द्वापर युग समाप्त होता है और अधर्म का, झगड़ों का कलह का युग कलियुग शुरू होता है। लेकिन राजा परीक्षित अपने चारित्र्य युक्त सत्य के प्रभाव व पराक्रम से कलियुग को हटाकर सत्ययुग का आविर्भाव करा देता है। राजा रामचन्द्र के लिये भी यही मान्यता है कि त्रेता युग होते हुए भी उनकी सत्यनिष्ठा सत्ययुग को ही प्रतिष्ठित कर देती है। अतः राजा परीक्षित जैसा श्रोता हो।

भागवत श्रवण का समय कौन-सा है?

यह नहीं भूलना चाहिये कि यह 'भागवत' मृत्यु के किनारे बैठे हुए जीव को कही गई गाथा है। गीताज्ञान का उचित समय युद्ध का प्रारम्भ है। भागवत गाथा को गाने का समय व्यासजी ने मृत्यु के समय को पसन्द किया है। विवेकानन्दजी ने कहा है—जीवन के अन्त में जब सब शून्य दिखलाई पड़े, तभी धर्मोदय का

उचितकाल है। परीक्षित राजा हैं। शत्रुविहीन पृथ्वी उसके चरणों में है, परन्तु जीवन की गहराई में उसे कहीं अपने कर्मों का पापदंश पीड़ित करता है, ऋषि का शाप इस योग्यपात्र को लगा है, मृत्यु को स्मरण करता वह भगवद् शरण ग्रहण करता है। भारत के बालक नचिकेता ने भी तो ज्ञान-सन्देश यम से ही प्राप्त किया था। मृत्यु की स्मृति अनिष्ट कार्यों एवं चिन्तन से मनुष्य को विरत रखती है। युधिष्ठिर महाराज के जीवन के पूत और पवित्र होने के पीछे यही रहस्य छिपा है कि उन्हें मृत्यु की निरन्तर स्मृति है। इसको ध्यान में लाने के लिये यक्ष युधिष्ठिर का संवाद वाला प्रसंग याद करें। यक्ष ने प्यासे युधिष्ठिर को सरोवर का पानी पीने से पहले जिन प्रश्नों का उत्तर देने के लिये कहा उनमें से एक प्रश्न यह था कि इस संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? इसका उत्तर देते हुए युधिष्ठिर ने बताया—

संसार के लोग दिन-रात दूसरों को मरते हुए देखते हैं लेकिन अपने बारे में यही चाहते हैं कि हम हमेशा जिन्दा रहें। इससे बढ़कर आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है।

इस कथा से दो बातें प्रकट होती है—पहली यह है कि युधिष्ठिर जैसे सत्त्व सम्पन्न लोग अपने शरीर के भूख-प्यास आदि वेगों पर नियन्त्रण रखते हैं। दूसरी, यह कि जीवन की क्षणभंगुरता कभी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं होती।

मृत्यु की जानकारी होने पर मृत्यु काल में मनुष्य का मन राग-रागिनी में नहीं रम सकता। इस प्रसंग में एकनाथ एवं उनके भक्त की कथा को याद किया जा सकता है। शुकदेव और राजा जनक के दृष्टान्त को एवं सम्राट अशोक के छोटे भाई के दृष्टान्त को भी ध्यान रखा जाना चाहिये (जो टी.वी. सीरियल में देखा था।)

भागवत की भाषा

भागवत की भाषा समाधि भाषा है, वैदान्तिक भाषा है और परमहंसों की संहिता है। इसमें परमहंस, अमलात्मा विमलात्मा गोते लगाते हैं। तो उनकी प्रीति प्रवृत्ति संसार की राग-रागिनियों में, सांसारिकता में, वैषयिक सुखों में नहीं हो सकती। विषय लम्पटता, अश्लीलता में उनका मन नहीं रम सकता। उसके किनारे वे फटक नहीं सकते। ये सब तो ब्रह्मानन्द रस के रसिक हैं और उसमें ही उनकी प्रीति-प्रवृत्ति हो सकती है।

अतः साधारण दृष्टि से, लौकिक दृष्टि से विचार करना भागवत के प्रति अन्याय है और वह हमें सही दिशा में नहीं ले जा पायेगा। इसलिये हमारे यहाँ श्रोता-वक्ता के अधिकार की बात कही जाती है जिसे नहीं समझते हुए हम शास्त्रकारों पर ही पक्षपात का आरोप लगाते हैं।

जहाँ-जहाँ भागवत हमें अर्थगम्य या भावगम्य न हो यथा चीरहरण लीला, रासलीला आदि हम अपने जीवन की दृष्टि से, लौकिक दृष्टि से विचार करने पर

विपरीत अर्थगम्य होगा और हमें निराशा-हताशा की ओर ले जाएगा। हमें लगेगा कि कहाँ हम प्रेरणा पाने के लिये उसकी शरण में आये हैं और कहाँ वह हमारे दूषित भावों को और अधिक जागृत करे, दूषित करे। वहाँ हमें गोपियों की दृष्टि से, वैदान्तिक दृष्टि या यौगिक दृष्टि से विचार करना है जिनसे सम्बन्धित ये लीलाएँ हैं। यहाँ चीरहरण की लीला संन्यास दीक्षा की लीला है अहम् विसर्जन की घटना है और चीरहरण के बाद रासलीला होती है जो ब्रह्म विहार की आत्मविलास, आत्म क्रीड़ा की लीला है, पर भूल से हम अपनी दृष्टि से, अपने स्तर से विचार करने लगते हैं यही भूल हो जाती है। मनुष्य के शरीर में जीवन-मूल्यों का मापयन्त्र लगा हुआ है। अतः कौन किस स्तर से चिन्तन करता है वह उसके अपने विकास पर निर्भर करता है।

फिर भगवान् कृष्ण की आयु क्या है? उस समय तक लिंग का बोध ही होता है क्या? उस समय तक तो नंगे ही घूमते हैं। अगर कृष्ण स्वयं विषय लम्पट होते तो द्रौपदी अपनी लाज की रक्षा के लिये कृष्ण को नहीं पुकार सकती।

अगर कृष्ण विषय लम्पट होते तो नरकासुर की कारा से मुक्त होने वाली ललनाएँ कृष्ण का वरण नहीं कर सकती थी।

फिर यह विचार करें इसका वक्ता कौन है? श्रोता कौन है? प्रसंग और समय कौन-सा है, और क्या विमलात्मा-अमलात्मा, ऋषि-मुनियों की इसमें प्रीति प्रवृत्ति हो सकती है क्या? इस सब पर दृष्टि डालेंगे तो स्पष्ट हो जाएगा चीरहरण लीला, रासपंचाध्यायी आदि में प्राकृत नायक नायिका नहीं है। इसमें अश्लीलता का नामो-निशान नहीं है। यह तो आत्मविदों का आत्मविहार है।

भागवत भगवान् की वाङ्मय मूर्ति

उद्धवजी ने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि महाराज! आप तो अपने भक्तों का कार्य पूरा करके उनको सुख देकर अन्तर्धान हो जायेंगे, फिर आपका, आपकी लीला का, आपके द्वारा प्रतिपादित धर्म का दर्शन कहाँ होगा? भगवान् कृष्ण ने कहा, उद्धव! मैं पहले तो अन्तर्धान होकर वैकुण्ठ या क्षीर सागर में चला जाया करता था पर अब-की बार अन्तर्धान होने पर मैं वैकुण्ठ या क्षीर सागर में नहीं जाऊँगा, श्रीमद्भागवत रूप समुद्र में वास करूँगा—

अतः भगवान श्रीकृष्ण बाहर से अन्तर्धान हुए परन्तु श्रीमद्भागवत रूप अमृत-समुद्र में आकर बैठ गये। भगवान् की प्रत्यक्ष वाङ्मयी शब्दमयी मूर्ति हम लोगों की आँखों के सामने है। अतः श्रीमद्भागवत एक ग्रन्थमात्र नहीं है। यह साक्षात् भगवान् कृष्ण का ही स्वरूप है। अतः भागवत को जानने का अर्थ भगवान् के स्वरूप को जानना अपने आत्मस्वरूप को ही जानना है।

यह भागवतामृत देवलोक में सुलभ नहीं है—स्वर्ग में कल्पतरु, कामधेनु, चिन्तामणि आदि दुर्लभ वस्तुएँ सुलभ हैं, परन्तु श्रीमद्भागवत सुलभ नहीं है।

सत्यलोक में विपुल वैभव और निर्वाण सुख बोध सुलभ है, परन्तु भागवत सुलभ नहीं है। कैलास-वैकुण्ठादि में शिव, विष्णु आदि की लीला सुलभ है, परन्तु गोलोक विहारी के सगुण-निर्गुण उभयविध स्वरूप की प्रतिपादक श्रीमद्भागवत सुलभ नहीं है। अहो कितना आश्चर्य है कि जो स्वर्ग, सत्य, कैलास और वैकुण्ठ में सुलभ नहीं, वही श्रीमद्भागवत भूलोक के भारतवर्ष में सुलभ है।

भारतवर्ष में भी देवताओं को सुलभ नहीं है। जब देवगण अमृत लेकर शुकदेव के पास पहुँचे और कहा देवलोक का अमृत परीक्षित को पिलाकर अमर कर देवें और भागवत कथामृत हमें सुना दीजिये। शुकदेवजी महाराज ने देवताओं को उपेक्षित कर दिया और परीक्षित को ही भागवतामृत पिलाया। भला कहाँ तो श्रीमद्भागवत का अमृत और कहाँ स्वर्ग का अमृत। दोनों की कोई तुलना नहीं। फिर भागवत सौदेबाजी की चीज नहीं है। सौदेबाजी से भागवत सुलभ नहीं हो सकती। अतः भागवत न तो देवलोक में सुलभ है, और न ही उन्हें भारतवर्ष में सुलभ हुआ।

और जिस भागवत में अमलात्मा, विमलात्मा, मुनिन्द्र परमहंस निरन्तर अवगाहन करते रहते हैं, गोता लगाते हैं, भगवान् की असीम कृपा से आज हमें भी इसमें गोता लगाने का अवसर मिल रहा है। जो भी कथा सुने उसे भूले नहीं, नित्य प्रातः उठने के पश्चात् और सोने से पहले स्मरण करे, अपना निरीक्षण करें कि मेरे जीवन की कथा ठीक चल रही है—कहीं गलत दिशा में तो नहीं जा रही। प्रगति हो रही है या नहीं। बाधा है तो उसे कैसे दूर करना।

नकल किसी की नहीं प्रेरणा हर कहीं से

नकल से हम नकली बनते हैं, सफलता की सम्भावना कम होती है। प्रेरणा से हम नये बने रहते हैं, क्योंकि हम देखते है कि यह बात हमारी परम्परा में है या नहीं, नहीं तो उसका भारतीयकरण करके उसे अपनी आवश्यकता और अपनी प्रकृति के अनुसार ढालकर स्वीकार करते हैं। इसमें दोनों ही नवीन बने रहते है, जिससे प्रेरणा ली वह भी और हम भी। सफलता की पूरी सम्भावना रहती है। फिर नकल और प्रेरणा में और भी कई बातों का अन्तर होता है। नकल में हलकी बातों को, निकृष्ट बातें ग्रहण की जाती हैं। प्रेरणा में श्रेष्ठ बातें ग्रहण करते हैं। नकल में तो सिर्फ बहना होता है, जो सहज होता है। प्रेरणा ग्रहण करना कष्टसाध्य होता है क्योंकि इसमें अपने को तपाना पड़ता है, गलाना पड़ता है। अतः नकल किसी की नहीं, प्रेरणा हर कहीं से। तभी हम देखते हैं कि भगवान् दत्तात्रेय जो 24 गुरु स्वीकारते हैं, उन्होंने पृथ्वी से गाम्भीर्य की, आकाश से उदारता की, सूर्य से दिव्यता की, चन्द्रमा से शीतलता की, अग्नि से ऊर्जा की, शिक्षा ली जो

सभी विषयों को भस्मसात् करके प्रकाश उत्पन्न करता है। उन्होंने कीट, पतंग, हरिण, मकड़ी, कुंवारी कन्या, पिंगला नाम की वेश्या तक से जीवनोपयोगी और वैराग्यनिष्ठ शिक्षाएं ग्रहण कीं। काशी में यह नियम है कि ब्राह्ममुहूर्त में संन्यासी गंगा-स्नान करके विश्वनाथजी का गंगाजल से अभिषेक करते हैं, तो आद्य शंकराचार्यजी भी गंगा-स्नान करके काशी विश्वनाथजी का अभिषेक करने जा रहे थे। उसी समय उन्होंने देखा सामने से एक चाण्डाल सपत्नीक चार कुत्तों के साथ बढ़ा चला आ रहा है। अपने मार्ग को अवरुद्ध होता देखकर आचार्यश्री ने कहा, 'अरे! हटो, हटो। यह सुनकर चाण्डाल ने पूछा, 'हे द्विजवर! आपने अन्नमय शरीर को अन्नमय शरीर से दूर होने के लिए कहा है अथवा चैतन्य को चैतन्य से अलग करने के लिए 'हटो-हटो' कहा है? क्या गंगाजल में या चाण्डाल-गृह के पिछवाड़े के कीचड़ में प्रतिबिम्बित होने से अम्बरमणि सूर्य में कुछ अन्तर आ जाता है? अथवा स्वर्ण कलश या मिट्टी के घड़े में प्रतिबद्ध आकाश में क्या कुछ भेद है? जैसे सूर्य व आकाश प्रतिबिम्बन व उपाधि-ग्रहण से असंग हैं—उसी प्रकार निस्तरंगित सहजानन्दसागररूप प्रत्यागात्मा द्विज, चाण्डाल आदि भेदों से नितरां अस्पृष्ट है, ये भेद महान् भ्रम मात्र हैं।'

यह सुनते ही आचार्य श्रीशंकर तत्क्षण कहते हैं जिसकी ऐसी मति है वह मेरा गुरु है। ऐसा कहकर दण्डवत प्रणाम करते हैं। अतः नकल किसी की नहीं प्रेरणा हर कहीं से। इसी आधार पर हमने ज्ञान के द्वार सदा खुले रखे। जहां से भी श्रेष्ठ बातें प्राप्त हों, उसे ग्रहण करें। पर हम स्वयं 'स्व' से च्युत हों, मतिभ्रम के शिकार हों तो उससे श्रेष्ठ ज्ञान नहीं कूड़ा-कचरा ही आएगा और स्वाधीनता के बाद से यही सब हो रहा है। इसके लिए आवश्यक है कि हम स्वयं गंगा-गीता-गायत्री-भागवत को अपनाकर 'स्व' में स्थित हों, तभी हम अन्यत्र से श्रेष्ठज्ञान ग्रहण करने के पात्र बनेंगे।

साधना के मार्ग में Never too late कभी लेट या विलम्ब नहीं होता। जागें तभी सवेरा। अतः आज से हमारी आध्यात्मिक यात्रा, योग की यात्रा, धर्म-भक्ति की यात्रा प्रारम्भ होनी चाहिये। इसका सभी दृढ़ संकल्प लेवें? तभी भागवत् कथा की सार्थकता सिद्ध होगी।

सर्वशेष में सबसे मुख्य बात कह रहा हूँ—शक्ति के बिना सारे आदर्श, सारे जीवन-मूल्य, आपका प्रेम, भक्ति, सिद्धान्त निष्ठा सब धरे रह जाते है। कितनी विडम्बना की बात है, पूरी भागवत में असुरों के दलन की, धर्म, न्याय, ज्ञान की पुनः प्रतिष्ठा की कथा है। नवरात्र में सारा देश शक्ति उपासना करता है, फिर भी हमारा देश आतंक से घिरा है, जो नित्य नया उत्पात खड़ा करते हैं और हम उसको

सह रहे हैं। हम निस्तेज, निर्वीय बने हुए हैं। आत्मा की अमरता को मानने वाले और सारे देवी-देवता शस्त्रधारी और दुष्टों का दलन करने वाले होते हुए भी हम भयभीत और असुरक्षित क्यों?

आज हमने अपने सारे ग्रंथों को, सारे देवी-देवता, अवतारों को पूजा की वस्तु बना दिया, जबकि ये जीने का आधार हैं, अवलम्बन है। इसको जीयेंगे, तभी हम स्वयं का, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का समुचित विकास कर सकेंगे। तभी सत्संग की, भागवत कथा की सार्थकता सिद्ध होगी।

मेरे गुरुदेव परम पूज्य स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज कहते हैं दुर्भाग्य से हम भगवान् श्रीकृष्ण के ओजस्वी और तेजस्वी रूप को भुलाकर लल्ला की कथा करके हिन्दू समाज को लल्लू-पंगु, तेजविहीन निर्वीय बना रहे हैं।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं पिछले हजार वर्षों के दौरान हम केवल भावुकतापूर्ण साहित्य की रचना कर सके हैं। देश ने मृदु साहित्य को ही प्राथमिकता दी और इसके फलस्वरूप पिछले हजार वर्षों के दौरान लिखे गये अधिकांश साहित्य को यदि निचोड़ा जाए, तो केवल आंसू ही निकलते हैं। ऐसे लोगों के हाथ में पड़कर गीता-भागवत भी अपनी शक्ति को खो बैठी। परन्तु श्रीकृष्ण ने अपनी शिक्षाओं में दुर्बलता-भावुकता को कोई स्थान नहीं दिया।

पुनः विवेकानन्द कहते हैं, 'हर वह चीज जो हमारी नस्ल को कमजोर बनाती है, हमारे पास गत हजार वर्षों से है! मानो इन हजार वर्षों के दौरान हमारे राष्ट्रीय जीवन का एकमात्र उद्देश्य था—किस तरह से अपने आपको अधिक-से-अधिक कमजोर बनाया जाय—ताकि एक दिन हम धरा पर रेंगने वाले कीड़ों की तरह हो जाएं जो हर उस व्यक्ति के कदमों में बिलबिलाएं, जो उन पर अपना पांव रखने की हिम्मत करता है। इसलिए मेरे मित्रों, मैं, जो तुम्हारी ही नस्ल का हूं, तुम्हारे साथ जीता और मरता हूं, तुम्हें कहना चाहता हूं, हमें शक्ति चाहिए—शक्ति; हां, हर समय शक्ति चाहिए और उपनिषद् गीता, भागवत इस 'शक्ति' के महान् स्रोत हैं। वे अपनी बुलन्द आवाज में हर नस्ल के, हर समाज के, हर पंथ के कमजोर, दयनीय, प्रताड़ित मानवों को अपने पैरों पर उठ खड़े होकर मुक्त होने का संदेश दे रहे हैं। शारीरिक मानसिक व आध्यात्मिक स्वतंत्रता यह उपनिषदों, गीता-भागवत के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त वाक्य हैं, जगाने वाले संकेत शब्द हैं।'

विवेकानन्द ने अपने ओजस्वी आध्यात्मिक सन्देश से यह सुस्पष्ट किया—'अभी श्रीकृष्ण का वृन्दावन वाला रूप अलग रख दो और गीता के उपदेश से अकर्मण्यता को दूर भगाने की सिंहगर्जना करते हुए श्रीकृष्ण की छवि की पूजा का दूर-दूर तक प्रसार करो। बाँसुरीवादन और अन्य लीलाएं देश में पुनरुज्जीवन नहीं लायेंगी। अब हमें एक ऐसे वीर नायक के आदर्श की आवश्यकता है जिसकी

नसों में कर्मण्यता का ओज, सिर से पैर तक उत्साह स्पन्दित होता हो। अब हमें आवश्यकता है, जीवन के संग्राम में एक वीर योद्धा के उत्साह की। हमें प्रणयासक्त प्रेमी की आवश्यकता नहीं है, जो जीवन को आनन्दवन मानता हैं।'

विवेकानन्द ने लोगों का आह्वान किया कि वे श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण की पूजा करें और उन्होंने लोगों के दैनिक जीवन में शक्तिपूजा की प्रथा आरम्भ करवाई। उन्होंने लोगों को प्रोत्साहित किया कि वे देश की भलाई के लिए गुरु गोविन्दसिंह और झांसी की रानी की वीरता का अनुकरण करें। अंगरेज एवं भारतीयों से सम्बन्धित एक दिलचस्प विडम्बना स्वामीजी ने बड़ी बुद्धिमत्ता से बताई है—'यूरोपवासियों के देवता ईसामसीह ने सिखाया है—किसी से शत्रुता मत करो, अगर कोई तुम्हें शाप दे तो तुम उसे आशीर्वाद दो, अगर कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर चांटा मारता है तो उसके सामने अपना दूसरा गाल भी कर दो। और हिन्दुओं के भगवान् गीता में कहते हैं—हमेशा पूर्ण उत्साह से काम करो, अपने शत्रुओं का नाश कर संसार का आनन्द उठाओ। लेकिन अन्ततः यीशु और श्रीकृष्ण ने जो कहा, उसका ठीक उलटा उनके अनुयायियों ने किया।'

विवेकानन्द आगे कहते हैं, यूरोपवासियों ने यीशु के उपदेश को गम्भीरता से लेने से इनकार कर दिया और भगवान् श्रीकृष्ण के आदेश का पालन कर अपने लिए सुख, सम्पत्ति और वैभव इकट्ठा करते रहे (अन्य राष्ट्रों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार से भी–लेखक)

हमारे बारे में स्वामीजी ने कहा, 'हम अपना बोरी-बिस्तर बांधकर कोने में बैठे हैं और रात-दिन यह गुनगुनाते हुए मृत्यु का चिन्तन करते रहते हैं—

'नलिनीदलगतजलमतितरलं तत्त्वज्जीवितमतिशयचपलम्'

कमल के पत्ते पर स्थित पानी की बूंद बड़ी अस्थिर और कम्पायमान होती है और ठीक ऐसा ही होता है मानव जीवन नश्वर और क्षणभंगुर। इसका परिणाम यह हो रहा है कि हमारा खून ठण्डा पड़ता जा रहा है और हमारी काया मृत्यु देवता यम के भय से कम्पायमान हो रही है। भगवद्गीता, भागवत की सीख का पालन कौन कर रहा है? यूरोपवासी! और यीशु की इच्छा के अनुसार कौन जीवनयापन कर रहा है? भगवान् श्रीकृष्ण के वंशज। अतः भगवान् कृष्ण के तेजस्वी ओजस्वी वीर रूप को प्रकट करने की आवश्यकता है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी शान्ति स्थापना का प्रयास कौरवों के पास एक शान्ति का प्रस्ताव भेजकर किया। परन्तु उन्होंने न्यायोचित मांग करने पाण्डवों को अहिंसा एवं शत्रुओं पर प्रेम से विजय पाने का उपदेश नहीं दिया।

भगवान् कृष्ण व गोपियों के मध्य लीला पर विचार

भगवान् कृष्ण एवं गोप-गोपियों का प्रेम प्राकृत नायक-नायिका की तरह का होता तो वे वृन्दावन छोड़कर मथुरा नहीं जाते। कर्तव्य के समय उन्होंने भावना को कभी स्थान नहीं दिया। वृन्दावन छोड़ने के पश्चात् वे सदैव गोप-गोपियों के प्रेम को याद करते रहे हैं पर उनसे मिलने कभी जाना नहीं हुआ।

नरकासुर की कैद से भगवान् ने सोलह हजार राजकुमारियों को छुड़ाया। उन्हें बाजारू स्त्री बनाने के लिये बंधन से मुक्त नहीं कराया था। वे तो उन्हें आर्य नारी की मर्यादा के उपयुक्त स्थान देना चाहते थे। सम्मानयुक्त जीवन प्रदान करने के लिये मुक्त कराया था। और यदि वे नारी लम्पट होते तो ये सबकी सब राजकुमारियाँ उन्हें वरण नहीं कर सकती थी। वे नारी रसिक नहीं थे यह घटना इसका प्रमाण है।

द्रौपदी अपनी लाज की रक्षा के लिये कृष्ण का ही आह्वान करती है। लम्पट या रसिक को कोई भी नारी अपनी लाज रक्षा के लिये प्रार्थना नहीं कर सकती।

दुर्वासा ऋषि को भोजन पकाने के लिये यमुना पार करना आवश्यक था। यमुना उस समय चढ़ी हुई थी। इसके उपाय स्वरूप भगवान् ने गोपियों से कहा कि यमुना माता से निवेदन करना कि यदि कृष्ण बाल ब्रह्मचारी हैं तो वह रास्ता दे देवें। और यह प्रार्थना कारगर सिद्ध हुई।

कृष्ण की गोपियों के साथ जो लीलाएँ हुई यथा चीरहरण लीला, रासलीला आदि इन पर लौकिक दृष्टि से विचार करेंगे तब तो अबोध बालक-बालिकाओं के खेल-कूद की लीलाएँ हैं। आज से 30 वर्ष पूर्व 10-12 वर्ष के बालक-बालिकाएँ एक साथ खेल-कूद करते थे। उनमें लिङ्गभेद का ज्ञान नहीं रहने से कोई विकार का प्रश्न ही नहीं उठता था एवं अध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने पर ये वैदान्तिक लीलाएँ हैं।

जिस प्रकार कृष्ण के स्वरूप या स्तर का विचार करते हैं, वैसे ही गोपियों के स्तर एवं स्वरूप का विचार करना आवश्यक है। तब भ्रान्ति का कोई अवसर

नहीं रहेगा। गोपियों के मुनिचरी, श्रुतिचरी स्वरूप पर चिन्तन करने से भ्रान्तियों का स्वयं निवारण हो जाता है। स्वयं साक्षात् महादेव गोपी बन कर इसमें भाग लेने आते हैं।

भक्ति दो प्रकार की होती है—रागानुभक्ति और वैद्यी भक्ति। जब भगवान् के अवतार का प्रकट काल होता है, तब रागानुभक्ति प्रशस्त है। जब भगवान् का प्रकट काल नहीं होता तब वैद्यी भक्ति ही उपयुक्त है। भगवान् कृष्ण का प्रकट काल होने से रागानुभक्ति भगवान् कृष्ण और गोपियों के मध्य हम देखते हैं। ऐसी मीराबाई के साथ भी भगवान् कृष्ण की रागानुभक्ति देखते हैं।



जब अत्यन्त बौद्धिक शक्तियों एवं अद्‌भुत वक्तृत्व शक्ति से सुसज्जित यूरोपियन भारत जाकर भारतवासियों से यह कहे कि उच्चतम ज्ञान की कुंजी यूरोप वालों के पास नहीं तुम्हारे पास है तथा तुम्हारे देवता, तुम्हारा दर्शन और तुम्हारी नैतिकता की यूरोप वाले छाया भी नहीं छू सकते, तब उसमें आश्चर्य क्या है कि भारतवासी हमारी सभ्यता से पीठ फेर ले।

—सर वैलेनटाइन

× × ×

रूस के राष्ट्रपति गोर्बोचेव के भारत आगमन पर पश्चिम के पतन का कारण बतलाते हुए गीता के दूसरे अध्याय के 62-63 वें श्लोक को उद्धृत किया था और कहा था कि यदि पश्चिम को विनाश से बचना है तो गीता को, भारतीय जीवनमूल्यों को स्वीकारना होगा।



रास लीला

हमारे यहां सृष्टि का मूल आनन्द है इसलिये हमारी संस्कृति भी आनन्दमूला है। आनन्द से सृष्टि उत्पन्न होती है, आनन्द में स्थित है और आनन्द में लय को प्राप्त होती है। सेमिटिक परम्परा में सृष्टि का मूल बीज पाप है। आदम और हौवा स्वर्ग में निषिद्ध फल को खाने के कारण अभिशप्त होकर स्वर्ग से च्युत हुए और उन्हीं पापी आदम-हौवा से सृष्टि का विस्तार होने से उनके अनुसार हम सब पाप की संतान हैं।

हमारे यहाँ सृष्टि आनन्द से, ईश्वर के संकल्प से होने के कारण हम आनन्द की, हम ईश्वर की, अमृत की, धर्म की सन्तान हैं। हमारे यहाँ सृष्टि आनन्द से, ईश्वर से प्रकट होने के कारण हमारी संस्कृति भी आनन्दमूला, ईश्वर मूला, धर्ममूला है।

तो यह धर्म की भूमि होने से स्वयं आनन्दकन्द भगवान् अवतरित होकर आते हैं, जबकि अन्यों के यहाँ पुत्रों से, दूतों से काम चल जाता है।

यहाँ तो साक्षात् भगवान् आते हैं जो आनन्दघन हैं, सच्चिदानन्द हैं, अतः भगवान् कृष्ण को सदा मुसकराते हुए पायेंगे चाहे कैसी भी घोर परिस्थिति हो। पर ईसामसीह का एक भी मुसकराता हुआ चित्र नहीं पायेंगे, और मुहम्मद पैगम्बर के कार्यों का अवगाहन करने पर उनका जो चित्र उभरता है, वह भय और आतंक का ही है। आनन्द या प्रसन्नता का नहीं।

भगवान् कृष्ण के जीवन को देखें जन्म से मृत्यु पर्यन्त सदा मुसकराता हुआ चित्र ही उभरता है। क्योंकि राग-द्वेष से रहित हैं। राग-द्वेष से रहित होता है वह प्रसन्नात्मा होता है। पर जो मानवता को दो भागों में बाँट देते हैं कि ये अपने हैं ये पराये हैं काफिर या Hidden हैं अतः वध के योग्य हैं और सारी मानवता को रक्त से स्नान कराने वाले प्रसन्न कैसे हो सकते हैं।

भगवान् कृष्ण का तो सारा जीवन शूलों से घिरा रहा। कारागार में जन्म, हत्यारे से बचाने के लिये एक गाँव में छिपाकर रखा गया, 6 दिन के थे तब पूतना

मारने के लिये आती है, फिर मारने का प्रयास करने वालों का ताँता लगा ही रहा पर वे सदा मुसकराते ही रहे।

जब चित्त शुद्ध होता है, राग-द्वेष से रहित होता है। मन हलका होता है, जब हम स्नान करते हैं। शरीर से मल का निवारण होता है तब कितनी ताजगी स्फूर्ति-आनन्द की अनुभूति करते हैं, स्वतः ही गीत गुनगुनाने लगते हैं, हम सभी Bathroom singer होते हैं। जब हम आनन्द में होते हैं, हमारे घरों में जब भी कोई मंगल कार्य शुभ कार्य होता है, तब स्वाभाविक रूप से नाचने-गाने की इच्छा होती है। भगवान् स्वयं राग-द्वेष रहित, आनन्दघन हैं अतः उन्होंने बृज में अनेक लीलाएँ की।

पर हम सभी किसी कार्य का मूल्यांकन अपने स्तर से करते हैं। हम सबके शरीर में मूल्य मापक यन्त्र लगा है। हम अन्यों का मूल्यांकन अपने स्तर से करते हैं, हम भगवान् कृष्ण की न अवस्था का, न स्थिति का और न गोपियों की मनःस्थिति का न उनकी आयु का विचार करते हैं, फलतः उसमें हमें अश्लीलता का, स्वयं के नीचपने का, कमीनेपन का उसमें भी दर्शन होने लगता है।

इसके निवारण के लिये भगवान् कृष्ण एवं गोपियों की अवस्था, आयु एवं मनःस्थिति के साथ-साथ इसके मूल श्रोता कौन हैं, इसके वक्ता कौन हैं, प्रसंग क्या है एवं अन्य श्रोता में कौन-कौन हैं। क्या वहाँ शृंगारिक चर्चा का अवसर है?

इन सब पर विचार करते ही स्पष्ट हो जाता है, यहाँ शृंगार नहीं ब्रह्मानन्द का प्रसंग है। आत्मानन्द का, परमानन्द का प्रसंग है। भगवान् तो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, रसस्वरूप है, रसो वे सः और उन्हीं के प्रतिबिम्ब या सन्तान होने से हम भी आनन्द स्वरूप है, अतः यह आत्मलीला है, आत्मक्रीड़ा है, तभी तो इसमें शामिल होने के लिये स्वयं भगवान् शम्भू और माँ पार्वती भी गोपी बनकर इस रास का आनन्द लेने के लिये आते हैं। वेद माता की ऋचाएँ गोपियाँ बनी हुई है, ऋषि-महर्षि गोपियाँ बने हुए हैं।

रासलीला का गलत अर्थ न लेवें कि हम भी रासलीला रचाने के अधिकारी हैं। रासलीला के पहले हमें कृष्ण बनना पड़ेगा यानी कालकूट विष को पचाना पड़ेगा, असुरों का वध करना पड़ेगा, कालिया नाग का दमन करना पड़ेगा, गोवर्द्धन पर्वत को उठाना पड़ेगा, तब हम रासलीला रचाने के अधिकारी बनेंगे उसके पूर्व नहीं। उसके पूर्व यदि ऐसा करते हैं तो हम दण्ड के पात्र बनेंगे।

अलौकिक प्रेम की अमर आराधिका : श्रीराधा

जहाँ कृष्ण वर्ण के श्रीकृष्ण का जन्म भाद्रपद मास की कृष्णाष्टमी को होता है, वहीं गौर वर्ण की सर्वशुक्ला श्रीराधाजी का जन्मोत्सव भाद्रपद मास की शुक्ल अष्टमी को मनाया जाता है। जैसे नभ से नीलिमा, चन्द्र से चन्द्रिका, जल से लहर तथा अग्नि से उष्णता भिन्न नहीं हो सकती है वैसे ही भारत की साहित्यिक एवं धार्मिक परम्पराओं में श्रीकृष्ण से राधा को भिन्न नहीं किया जा सकता। किन्तु राधाजी की ऐतिहासिकता अभी तक भी इतिहासकारों की त्रिकालदर्शिनी प्रज्ञा के लिए चुनौती बनी हुई है। श्रीमद्‌भागवत महापुराण राधाजी के विषय में रहस्यपूर्ण मौन धारण किए हुए हैं। कहा जाता है कि वहाँ वर्णित एक विशेष गोपी, जिससे कृष्ण का विशेष अनुराग था, वृषभानुदुलारी श्रीराधाजी ही हैं। वैसे तो राधाजी के नाम से 'श्रीराधिकोपनिषद्', 'राधाकातापिनी उपनिषद्' भी मिलते हैं, पर वे उपनिषद् कितने प्राचीन हैं यह कहना कठिन है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णित है—

ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिर्नभिन्ना यथा च सृष्टि कुरुते सनातनः।
शिवश्च सर्वा कलया जगत्सु माया च सर्वे च तया विमोहिता।।

रासेश्वरी श्रीराधा ब्रह्म से अभिन्न है, चराचर जगत् की स्वामिनी है। सृष्टि में भी श्रीराधा सत्ता, ज्ञान और आनन्द रूप से विराज रही हैं। शोभा, कला और रमणीयता जहाँ है, वह उन्हीं के श्रीविग्रह की ही देन है।

श्री रामहरिदासजी शास्त्री वेदांताचार्य ने सबको विस्मय में डालते हुए वेदों तक में राधा तत्त्व को खोज निकाला है। अश्वलायनीय शाखा—ऋग्वेद में इस प्रकार वर्णन है—

राधया माधवो देवो माधवेनैव
राधिका विभ्राजन्ते जनेष्विति।

अर्थात्, श्रीराधाजी के द्वारा श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णजी के द्वारा श्रीराधा सुशोभित होते हैं, वे अपने भक्तों में इस प्रकार हैं जैसे एक प्राण दो देह हों।

उक्त विद्वान् ने सामवेद से निम्न उदाहरण दिया है—

अनाद्योयं पुरुष एक एवास्ति तदेवं रूपं विधाय सर्वान् रसान् समाहरति स्वयमेव नायिका रूपं विधाय समाराधन तत्परोभूत तस्मात्तां राधां रसिकानन्दां वेद विदोवदन्ति तस्मादानन्द मयोऽयं लोक इति।

अर्थात्, सबका आदि कारण पुरुष एक ही है, ऐसे उसी एक रूप को दो प्रकार वाला करके सम्पूर्ण रसों को एकत्रित करता है और वह स्वयं ही इसीलिए रमणी रूप धारण कर लीला आराधन में तत्पर होता है इसीलिए श्रीराधा रूप से स्वयं ही मान करके श्रीकृष्ण रूप से अपने आप को मानता है। उस रसिका नन्दिनी श्रीराधा को वेद के रहस्य जानने वाले ही जानते हैं और वर्णन करते हैं। इसीलिए गोलोक आनन्दमय है।

इतिहासकारों के गम्भीर विचार के लिए अथर्ववेद में भी श्रीराधा के दर्शन हैं—

येयं राधायश्च कृष्णे रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थ द्विघाऽभूत।

अर्थात्, श्रीराधा और कृष्ण—दोनों एक ही रस के समुद्र हैं पर क्रीडा के लिए दो बने हैं।

राधा-कृष्ण की विश्वविश्रुत गाथा का सबसे अधिक व्यथापूर्ण स्वर है राधा-कृष्ण का जीवनव्यापी दारुण वियोग। अश्लीलता से अंधी हुई आंखों वाले आलोचकों को स्मरण रखना चाहिए कि श्रीकृष्ण केवल 12 वर्ष की बाल्यावस्था में ही गोकुल तज कर मथुरा में कंस का संहार करने के लिए आ गए थे तथा उसके पश्चात् वे वहीं से द्वारका चले गए और जीवन भर व्रज में नहीं आए। जाते समय उन्होंने राधा को कहा था कि मैं कंस को मार कर कल ही वापस आ जाऊंगा। किन्तु वह 'कल' कभी न आया। हरिऔधजी के 'प्रिय प्रवास' में राधा पवन को दूत बनाकर संदेश भेजती है—

मेरे प्यारे नव जलद से
कंज से नेत्र काले,
जाके आए न मधुवन से
औ न भेजा सन्देसा।
मैं रो रो के प्रिय-विरह में
बावली हो रही हूं
जा के मेरी सब दुःख-कथा
श्याम को तू सुना दे।।

श्री चतुरसेन शास्त्री ने अपने भावनाट्य 'राधा-कृष्ण' में उस चित्र को खींचा है जब जीवन के अन्तिम प्रहर में कुरुक्षेत्र में कुंभ के मेले पर राधा-कृष्ण का थोड़े समय के लिए मिलन होता है—

'बहुत दिनों में मिले राधा'

'पर मिले तो, मैं तो कहती थी मिलेंगे और जरूर मिलेंगे।'

'हँस रही हो राधा?'

'हँसूँ ना, कितने दिन बाद हँसी हूँ, जानते हो कृष्ण?'

'शायद अस्सी बरस बाद।'

'क्या तुम रो रहे हो कृष्ण?'

'नहीं राधे'

'कृष्ण, बहुत दिन हुए, पर तुम्हें मैं देख सकती हूँ, देखो तुम्हारे सिर पर मोर मुकुट है, कमर में पीतांबर है, हाथ में बंसी है। (सोचकर) न, बंसी नहीं है! बंसी तो मेरे पास है। याद है कृष्ण! जब तुम गोकुल से चले थे तब मैंने छिपा ली थी।'

'याद है राधा'

'कितने बरस हुए कृष्ण?'

'अस्सी बरस'!!'

बस फिर इसके पश्चात् राधा और कृष्ण का इहलौकिक लीला में कभी पुनर्मिलन नहीं हुआ। पावन स्नेह की इस विश्व-दुर्लभ गाथा का यह सबसे अधिक वेदनापूर्ण स्वर महाकवि हरिऔध के कंठ से गूंज उठा है—

सच्चे स्नेह अवनिजन के
देश में श्याम जैसे,
राधा जैसी सदय
हृदयाविश्व प्रेमानुरक्ता,
हे विश्वात्मा! भारत भुव
के अंक में और आवें,
ऐसी व्यापी विरह घटना
किन्तु कोई न होवें।।

पूर्व और पश्चिम, किसी भी दिशा के किसी भी देश में, किसी भी साहित्यकार को ऐसे नायक नहीं मिले हैं जैसे भारत के साहित्यकारों को राम और कृष्ण के रूप में मिले हैं।

× × ×

इसी प्रकार सीता के प्रति प्रेम और राधा तथा गोपियों के विशुद्ध एवं अनन्य प्रेम के सदृश, प्रेम का वर्णन भी मुझे तो अंग्रेजी द्वारा विदेशी साहित्य का निरंतर अध्ययन करते रहने पर भी किसी भी विदेशी साहित्य में पढ़ने को नहीं मिला।

—**सेठ गोविन्ददास** कर्तव्य (पृष्ठ-ख)

गुरुवाणी में कृष्ण चरित्र

भारत की एकता के साक्षात्कार के लिए भारतीय जनगण के हृदय में ध्वनित होने वाली राम तथा कृष्ण चरित की अमर रागिनी का श्रुति दर्शन अनिवार्य है। कैलास से लेकर कन्याकुमारी तक तथा कामरूप से द्वारका तक प्रदेश, प्रकृति, पंथ, वेशभूषा, भाषा, भोजन तथा रीति-रिवाज की असंख्य विभिन्नताओं के उपरान्त भी हमारे कोटि-कोटि हृदयों को एक ही स्नेह तार में गूंथने वाले तत्त्व हैं—श्रीराम एवं श्रीकृष्ण चरित। कोट्यावधि भारतवासियों की हृत्तन्त्री राम एवं कृष्ण के नाम पर समान रूप से झंकृत हो उठती है। भारत की भाषाएँ भले ही अनेक हैं पर उनका अन्तःस्थ भाव एक है, भारतीय जनगण के हृदय के तार भले ही अनेक हैं पर उनकी झंकार एक है। उसी एक झंकार को श्रुतिगोचर करने का पुण्यपावन दिवस श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव आया है।

आज सामान्य रूप से समस्त देश तथा विशेष रूप से पंजाब प्रदेश की परिस्थिति विषम है। भारत के सांस्कृतिक ऐक्य के सूत्र शिथिल पड़ गए हैं, स्वार्थ के शत-शत कौरव उत्पात मचा रहे हैं, मातृभूमि के वास्तविक शत्रुओं से युद्ध न करके अपनों के विरुद्ध ही मोर्चा लगाने वाले दुर्योधन (भ्रष्ट योद्धा) कृपाण ताने देश की अखण्डता का खून करने को उद्यत हैं, दुःशासन (बुरे शासन) के पापी एवं असह्य करों (हाथों अथवा टैक्स) ने भरी सभा (विधानसभा इत्यादि) में असहाय प्रजारूपी द्रौपदी का चीरहरण कर उसकी लाज लूट ली है, देशभर के अनेक भू-भाग (आधा पंजाब, सिन्ध, ब्लोचिस्तान, सीमान्त, आधा बंगाल, गोआ तथा हिमालय का 14 हजार वर्गमील क्षेत्र) पारतंत्र्य के कंस-कारागार में पड़े कष्ट भोग रहे हैं। जरा (बुढ़ापे) में दुरभिसन्धियाँ करने वाले जरासन्धों की धर्मनिरपेक्ष नीति-नीड़ में धर्म-नीति बन्दिनी पड़ी है, स्वयं भारत के बूचड़खानों में प्रतिदिन तीन लाख गोवंश के गले पर छुरी चलती देख आज गौएँ अपने प्यारे गोपाल को कातर वाणी में पुकार रही हैं, चीन-रूपी शकुनि अपनी कूटनीति के दाँव-पेंच से भारतरूपी युधिष्ठिर को छल रहा है, साम्यवादी बकासुर सारे देश को खा जाने के लिए अपना मुख फैला रहा है, देश के अन्दर बैठे हुए बकासुर-बन्धु अपने चंचुप्रहार से राष्ट्र को भीतर से खोखला कर रहे हैं; पाकिस्तान रूपी कालयवन भी देश की मान-मथुरा पर कुदृष्टि

जमाए बैठा है। आन्तरिक विग्रह एवं बाह्य संकटों से घिरा हुआ भारत आज अपने भगवान् को पुकार रहा है। आज देश का जनगण पुनः उस ऐक्य के अमर सन्देश को सुनने के लिए आतुर है जो महाभारत महाकाव्य में शाश्वत बनकर गूँज रहा है—

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मम्, न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्ना।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नवन्ति, न वै भिन्ना प्रश्रयं रोचयन्ति।।

अर्थात् बिखरे हुए, असंगठित लोग न धर्म पर चल सकते हैं, न सुख प्राप्त करते हैं, न गौरव तथा न ही कोई आश्रय, प्रश्रय का आनन्द पा सकते हैं।

आज वेद, उपनिषद्, गीता एवं गुरुवाणी की धरती पर विग्रह के बादल उमड़ रहे हैं। सिख सम्प्रदाय को हिन्दू जाति का अभिन्न अंग बनाने वाली श्रीकृष्ण चरित की अमर रागिनी आज हम भूल गए हैं। इसीलिए आज यह परस्पर विग्रह, विद्वेष एवं वैषम्य दृष्टिगोचर होता है। स्वयं सिख गुरुओं ने श्रीकृष्ण चरित का जो अमर गान गाया है, यदि आज वह पुनः हमारे हृदयों में प्रतिध्वनित होने लगे तो समस्त विभिन्नताएँ दूर कर हम एक सबल-सुसंगठित राष्ट्र के रूप में खड़े हो जाएँ।

श्रीगुरुग्रन्थ साहब

श्रीगुरुग्रन्थ साहब, सिख सम्प्रदाय का सर्वमान्य धर्मग्रन्थ है, ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य का अगाध सागर है। उसमें लगभग 30 हजार बार श्रीराम का नाम आता है तथा लगभग 16 हजार बार श्रीकृष्ण एवं हरि, गोविन्द, गोपाल इत्यादि नाम आये हैं। यदि श्रीगुरु ग्रन्थ साहब में से राम एवं कृष्ण के नाम वाले पृष्ठ निकाल दिए जाएँ तो डेढ़ हजार पृष्ठों के विराट् ग्रन्थ में से जिल्द के प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के अतिरिक्त कुछ भी न बचे। श्रीराम एवं कृष्ण के नाम से गूँजती हुई गुरुवाणी का प्रतिदिन-पाठ करने का दावा करने वाले सज्जन भी यदि राम एवं कृष्ण के भक्त, अ-केशधारी हिन्दुओं से शत्रुता रखें तो स्वयं लज्जा के लिए भी लज्जित होने का प्रसंग है।

सर्वं कृष्णमयं जगत्

श्रीगुरुग्रन्थ साहब की साक्षी है—

एक कृष्ण सर्व देवा देव देवोत् आत्मः।
आत्मं श्री वासुदेवस्त जे को जानस भेद
नानक ताका दास है, सोई निरंजन देव।।
आपे गोपी आपे कान्हा, आपे गउ चराने वाला।
आप उपावे, आप खपावे, तुध लेप नहीं इक तिलरंगा।

(गुरु अर्जुनदेवजी)

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण के निर्गुण एवं सगुण—दोनों रूपों की वन्दना श्रीगुरु ग्रन्थ साहब में गायी गयी है।

श्रीकृष्ण चरित के पद

श्री गुरु नानकदेव जी गाते हैं—

हरि का नाम सदा सुखदाई।
पांचाली की राज सभा
में, हरि ने लाज बचाई।

पांचाली (द्रौपदी) की राजसभा में लाज बचाने वाले निश्चय ही महाभारत की महाविभूति योगेश्वर श्रीकृष्ण ही हो सकते हैं, कोई निर्गुण हरि नहीं।

श्रीगुरु ग्रन्थ साहब के अन्तर्गत भक्त नामदेवजी का पद है—

हरि हरि कान पूतना तरी,
बाल घातनी कपटहिं भरी।
केसी कंस मंथन जिन लीला,
जीय दान काली को दीया।
प्रणवे नामा, ऐसो हरी,
जाय जपत, भय-अपदा टरी।।

स्वयं गुरु नानकदेवजी ने गाया है—

जुब महि जोरि छली चंद्रावलि
कान्ह कुसनु जादमु मइया।
पारजातु गोपी ले आइया
निंद्रावन महि रंग किया।

अर्थात् यजुर्वेद में कहा है कि 'चन्द्रवंश में कान्ह कृष्ण यादव बड़े वीर हुए, उन्होंने वृन्दावन में गोपियों के संग रास रचाई।' प्रसंग चारों वेदों के वर्णन का है। चाहे यजुर्वेद में श्रीकृष्ण चरित का होना ऐतिहासिक तथ्य न हो फिर भी उक्त पद से गुरुनानक की कृष्ण-भक्ति अवश्य प्रकट होती है।

चतुर्थ गुरु की साक्षी है—'जिउ प्रकार द्रोपती दुसरां आनी हरि हरि लाज निकमे।'

श्रीकृष्ण स्तुति में गुरुनानक कहते हैं—'श्री उधाई नुमति हथि कोनो कर्ता नथि किसा बड़ा भया' जिसने सब जीवन सृष्टि करके सारा विधान अपने हाथ में रखा हुआ है, उनके लिए कालीय नाग को नाथना ही बड़प्पन का एकमात्र कारण नहीं था।

श्रीकृष्ण का सुधावर्षी नाम

सिख गुरुओं ने हरि नाम की अनन्त महिमा गाई है।

गुरु नानकदेवजी जीव को उपदेश करते हैं—

जपहु मन मेरे राम नारायण गोविन्दा हरि माधो।

अन्यत्र वे गाते हैं—

हरि चरण कमल मकरंद लोभित माते
अनदिनो मोहि आहो विभाग।
कृपा जल देहि नानक सारिंग कउ
होर गाते तेरै नामि बासा।।

हरि चरण कमल के मकरंद का लोभी बना हुआ गुरु नानकदेवजी का मन-भ्रमर प्रभाव शुद्ध वैष्णव भक्ति की रागिनी गा रहा है। चतुर्थ गुरु श्री रामदासजी की हृदय-वीणा गोविन्द-गोविन्द ही गा रही है।

गोविंदु गोविंदु प्रीतम् मनि प्रीतम्
मिलि सतसंगति संवाद मनु मोहै।
जीप गोविंदु गोविंदु, धिआइए।
सम कउ दानु देह प्रभ ओहै।
मेरे भाई जना मोकउ, गोविंदु गोविंदु गोबिन्दु मन भी है।
गोविंदु गोविंदु गोविंदु गुण माना मिलि गुरु साध संगति जन सेहि।

श्रीगुरुग्रंथ साहब के अन्तर्गत पृ. 1082 पर पंचम गुरु श्री अर्जुनदेव जी का राग मारू में गाया हुआ सहस्रनाम है जो भगवान् श्रीकृष्ण के असंख्य नामों से गूँज रहा है—

अचुत, पारब्रह्म परमेसुर अंतरजामी।
मधुसूदन दामोदर सुआमी।
रिखीकेस गोवर्धन धारी
मुरली मनोहर हरि रंगा।
मोहन माधव कृष्ण मुरारे।
जगदीसुर हरि जीउ असुर संघारे।
जग जीवन अविनासी ठाकुर
घट घट वासी है संगा।।

भगति बछलु अनाथह नवो।

गोपीनाथ सगल है साथे।

वासुदेव निरंजन दाते

नानि न साकउ गुण अंगा।।

मुकुंद मनोहर लखमी नारायण।

द्रौपदी लज्जा निवारि उधारण। कमला कन काहि कंतूहल।

अनद विनोदी निह संगा।

गुरु अत्यन्त कलारुचिर एवं भाव गर्भित स्तुति में आगे गाते हैं—

निराहारी निरतैक सभाइआ।

धारि खेलु चतुरभुज कहाइआ।

सांवल सुन्दर रूप वाण वहि

नेणु सुनत सम मौहेगा।

वन गाला विभूखन कमल नैन,

सुन्दर कुण्डल मुकुट बैन।

संख चक्र गदा है धारी

नहा सारथी सत संगा।

....

आपे गोपी आपे कान्हा

आपि गऊ चरावै वाना।

आप उपा वहि आप रतपावहि

बुधु लेपु नहीं इकु तिलु रंगा।।

अन्यत्र पंचम गुरु गाते हैं—

दोन दय आल गोपाल गोविन्दा हरि धिआवहु।

श्रीगुरुग्रन्थ साहब में श्रीकृष्ण एवं विष्णु के निम्नलिखित नामों की पुनः-पुनः वन्दना गायी गयी है—मधुसूदन, दामोदर, हृषिकेश, गोवर्धनधारी, मुरलीमनोहर, हरि, मोहन, माधव, कृष्ण, मुरारी, कान्ह, धरणीधर, नृसिंह, नारायण, वामन, श्रीराम, वनमाली, चक्रधारिण, गोपीनाथ, वासुदेव, मुकुन्द, लक्ष्मीनारायण, कमलाकांत, श्रीरंग, केशव, चतुर्भुज, श्यामसुन्दर, शंख-चक्रधारी, जगन्नाथ, गोपाल, शारंगधर, भगवान, विठूला, धनंजय, गोविन्द, गोपाल, श्रीधर इत्यादि।

अवतारवाद

चाहे कुछ विचारक अवतारवाद में विश्वास नहीं रखते, किन्तु स्वयं श्रीगुरुग्रन्थ साहब वामन, बलि, प्रह्लाद, ध्रुव, नरसिंह, राम, कृष्ण इत्यादि अवतारी विभूतियों के नामों से गुंजायमान है। ग्रन्थ साहब में भाटो की वाणी सवैयों में है जहाँ गुरु नानकदेवजी को भी नरसिंह, वामन, राम, कृष्ण के समान विष्णु का अवतार कहकर उनकी वन्दना की गयी है। सुदामा, द्रौपदी, ध्रुव-प्रह्लाद इत्यादि के चरित्र तो गुरुओं ने भी आनन्द से गाए हैं। भाई गुरुदासजी की वाणी में विदुर, सुदामा, धन्ता, नामदेव इत्यादि भक्तों के चरित्र अत्यन्त भावपूर्ण है।

दशमेशगुरु का कृष्ण चरित

अपने महान् 'दशम ग्रन्थ' में गुरु गोविन्दसिंह जी गाते हैं—

मै नगवे शाहिं प्रथम मनाऊँ,
किसन निशन काहूं वहि ध्याऊँ।
कान सुनै, पहचान न तिन सौ, लिव लागी मोरी पग इनसौं
कृष्ण यथामति चरित्र उचारौं, चूक ह्वेय कवि लेहुँ सुधारों।

प्रथम दो पंक्तियों में भ्रम होता है कि किशन निशन में उनकी आस्था नहीं है किन्तु 'लिव लागी मोरी पग इन सौं' से गुरु की गम्भीर सहज भक्ति प्रकट हो जाती है।

भगवान श्रीकृष्ण के रूप को देखकर उनका मन स्वतः कह उठता है—

'मुख जाहि विशायपति के सम है।
बन सें तिन सीत रिझयो अरूं गायो।
वा सुर की धुन निज सुउन्न में,
ब्रह्म का त्रिया सबही सुनियायो।
धाई चली हरि के मिलवे कहूं।
प्रिय श्याम सबके मन में जब भायो।
श्री कान्ह मनो गृगनी जुबती।
छलिने कहुं घटंक हे रबनायो।'

गुरु गोविन्द सिंह के विचार में मुरली की धुन सुन सभी यंत्रवत् खड़े रह जाते हैं।

एक निर्मल सन्त की मुरली पर पंक्तियाँ देखिए—

द्वापर कन्हाई बनि बंसुरी बजाई सुनि,
सुर मुनि नर काहूं धीर न तलै कइयों।
कलिजुग तारिबे कोई साधन को पारिबो को,
सुन्दर सरूप गुरु गोविन्द हवै अवत्रवो।।

भगवान् की रूप-माधुरी भी गुरु गोविन्द सिंह से अछूती नहीं रही। यह तो है ही परन्तु यहाँ रूप और मुरली वर्णन देखिए—

अन्य कवियों की भांति उन्होंने लिखा है—

टाढ़ रही जमुना सुनि कै
धुनिराग मलै सुबिबे को चेही हे,
मोह रहे बन के गज औ,
इकठे मिलि आवन सिंह सहे है,
अवात है सुर में डल के सुर
त्याग सबे सुर ध्यान कहै है।
महारास कासे तो मानो स्वयं देखने लगे
जब आई है कातक की रतु सीतल,
कान्ह तवै अति ही रसिया,
संग गोपाल खेले विचार करमो,
भे पुतो भगवान् गंथ जसिया,
अपवित्रन लोगनि के जिह के पग
लागत पद सबै नसिया
तिह को सुनि तिरियन के संग खेल।
निबा रहु काम उहे बसिया।

भगवान् की गोवर्धन-लीला को उनकी इन पंक्तियों में देखिए—

आयो है उब्द त्रूत्र के दिवोस
सभी मिलि गोपन बात उचारी

भगवान् कृष्ण के अनन्य उपासक थे वे—

'जो अभा ब्रजनाथ की गाइ हूँ और कविमन बीच करेगे।

इस तरह लगभग भगवान् कृष्ण के सभी रूप उनकी लेखनी के बीच आये हैं।

राम का नाम ही नहीं, राम का काम भी

आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री

'परशुराम की प्रतीक्षा' में दिनकर ने भारतीय जनता की भक्तिजनित अकर्मण्यता पर क्षोभ प्रकट करते हुए कहा है, 'दो उन्हें राम तो मात्र नाम वे लेंगी।'[1] वास्तव में यह क्षोभ बहुत पुराना है। भक्ति का आवरण डाल कर तमोगुणी आलस्य बहुत बार सतोगुणी स्थैर्य के रूप में अपने को प्रचारित करता है और इस प्रकार धर्मग्लानि को मिटाने के स्थान पर बढ़ाता है। विष्णुपुराणकार ने इसी मनोवृत्ति की भर्त्सना करते हुए कहा था—

अपहाय निजं कर्म, कृष्णकृष्णेतिवादिनः।
तेहरेर्द्वेषिणः पापाः धर्मार्थजन्म यद्धरेः॥[2]

अर्थात् अपने कर्म को त्याग कर केवल कृष्ण-कृष्ण रटने वाले तो हरि के द्वेषी और पापी हैं क्योंकि हरि का जन्म ही धर्म (की स्थापना) के लिए होता है। सामाजिक कर्तव्य को भक्ति के साथ जोड़ने वाली यह परंपरा मध्यकाल में बहुत दुर्बल हो गयी थी। कुछ दूर तक इसके लिए सामयिक परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी थी पर ऐसा लगता है कि संसार-विमुख होकर वैयक्तिक भावसाधना में निरत रहने की विधि पर आचार्यों द्वारा अधिक जोर दिये जाने के फलस्वरूप भी सामाजिक कर्तव्यों के प्रति अवहेलना बुद्धि दृढ़ हुई थी। 'हरेर्नाम, हरेर्नाम, हरेर्नामैव केवलम्, कलौ नास्त्येव, नास्त्येव, नास्त्येव गतिरन्यथा'[3] अर्थात् कलियुग में हरिनाम को छोड़कर और कोई दूसरी गति है ही नहीं, मध्य युग में यह प्रायः सर्वमान्य सिद्धांत बन गया था। भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से श्रेष्ठ मानने के कारण[4] बहुत से भावुक भक्त उनका तिरस्कार करने लगे थे। इस एकांगदर्शिता से सामाजिक समग्रता को क्षति पहुँच रही थी। इसी पृष्ठभूमि में तुलसी का उदय हुआ था।

तुलसी ने इस परिस्थिति को पहचाना था। राम का नाम उनका भी सबसे बड़ा संबल था किन्तु वे राम के काम को भी नहीं भूले थे। मध्यकालीन भक्तों में उनके सदृश बहुत कम विचारक थे जिन्होंने राम के नाम और काम दोनों पर जोर दिया हो। इसका सर्वप्रथम कारण उनका यह विश्वास था कि 'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि'[5] जहाँ ज्ञान, योग एवं शांत भाव की साधनाओं में

निर्वैयक्तिकता पर बल दिया जाता है वहीं सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्य भाव की साधनाएँ बहुत अधिक वैयक्तिक हैं। इन दोनों स्थितियों में जगत् को प्रायः विस्मृत कर दिया जाता है। दार्शनिक दृष्टि से जगत् को मिथ्या या सत्य मानना अलग बात है, व्यावहारिक दृष्टि से उसकी उपेक्षा ज्ञानियों और वैयक्तिक साधना पर बल देने वाले भक्तों ने समान रूप से की है। तुलसीदास ने तात्त्विक दृष्टि से जगत् को सत्य माना था या मिथ्या, इस पर विवाद हो सकता है किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि वे जगत् को 'सीय राम मय' मानते थे। फलतः व्यवहार में वे उसकी सेवा करना अपना धर्म समझते थे। इसीलिए उन्होंने श्रीराम से कहलाया था कि मुझे सेवक प्रिय हैं और उनमें भी अनन्यगति सेवक। अपने अनन्य सेवक का लक्षण बताते हुए तुलसी के राम कहते हैं—

सो अनन्य जाके अस मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।[6]

अर्थात् जो दृढ़तापूर्वक इस चराचर जगत् को प्रभु का व्यक्त रूप मानकर इसकी सेवा में रत रहता है वही (श्रीराम का) अनन्य भक्त है। सेव्य के रूप में समस्त व्यक्त जगत् रूपी राम को स्वीकारने का अर्थ ही है कर्मठतापूर्वक 'हेतु-रहित परहित निरत' रहना। यह व्याख्या श्रीराम ने ही की है। जटायु ने तो राम के लिए ही प्राण दिये थे किन्तु प्रभु ने उसकी सराहना करते हुए कहा था, 'परहित बस जिन्ह के मन माहीं, तिंह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।'[7] इसका सीधा-सादा अर्थ यही है कि तुलसी ने श्रीराम के सगुण-साकार-अवतारीरूप को स्वीकार करते हुए भी उन्हें इतिहास और भूगोल से नहीं बांधा है। 'देस, काल, दिसि बिदिसहु माहीं, कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं'[8] कहने वाले तुलसीदास की मान्यता है कि राम की सेवा अर्थात् राम का काम करने का अवसर 'सबहि सुलभ सब दिन, सब देसा'। फिर भी यह सच है कि कोई विरला भाग्यवान ही राम का काम कर पाता है अधिकतर लोग तो राम के काम का बहाना करके रावण का ही काम करते रहते हैं क्योंकि उनके हृदय में तो काम, क्रोध, लोभ, मोह का अंधेरा छाया रहता है। इसीलिए, तुलसी केवल कर्म पर जोर नहीं देते, बाहर-भीतर उजाला करने वाले राम नाम के जप पर भी जोर देते हैं—

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जो चाहसि उजिआर।।[9]

इसका अर्थ यही है कि तुलसीदास के लिए कर्म-चेतना स्वतंत्र न होकर भक्ति का अनिवार्य अंग है। कर्म विपथगामी न हो जाये इसके लिए आवश्यक है कि वह भक्ति द्वारा (जिसका आधार नामजप है)[10] अनुशासित हो और भक्ति नितांत वैयक्तिक भावसाधना (जिसकी विकृति बहुत आसान है) के कारण

निष्क्रिय न हो जाये इसके लिए उसे चराचर जगत् के रूप में अभिव्यक्त प्रभु की सेवा में नियोजित कर दिया जाये, यही तुलसीदास का अभिप्राय ज्ञात होता है।

तुलसी ने रामनाम की अमित महिमा का बार-बार गान किया है, केवल मानस में ही नहीं, अपनी समस्त कृतियों में। मानस के बालकाण्ड में नामवंदना के दोहों में उन्होंने भाव-भरी युक्तियों से सिद्ध किया है कि राम का नाम उनके निर्गुण-सगुण दोनों रूपों से श्रेष्ठ है। प्रभु के ये दोनों रूप 'अगम' हैं किन्तु नाम-जप से दोनों 'सुगम' हो जाते हैं अतः स्पष्ट है कि नाम ने इन दोनों को अपने बलबूते से अपने वश में कर रखा है। सच्चिदानन्द ब्रह्म तो सभी जीवों के हृदय में विद्यमान हैं, फिर भी जग के सभी जीव दीन-दुःखी हैं। नाम के निरूपण एवं नाम के यत्न से या यों कहें नाम के अर्थ पर मनन करते हुए उसके निरंतर जप से अंतःस्थित ब्रह्म प्रत्यक्ष होकर जीव के दुःख-कष्ट दूर कर उसे उसी प्रकार परमानंदमय बना देते हैं जिस प्रकार रत्न से उसका मूल्य प्रकट होकर व्यक्ति के अभावों को दूर कर उसे इच्छित वस्तुएँ प्रदान करने में समर्थ है। प्रभु श्रीराम ने अवतार ग्रहण कर ताड़का, खरदूषण, कुंभकर्ण, रावण आदि कुछ निशाचरों का वध किया और अहल्या, शबरी, गीध, सुग्रीव, विभीषण आदि कुछ भक्तों को निवाजा किन्तु उनके नाम ने तो कलि के समस्त कलुषों को नष्ट कर असंख्य भक्तों को निवाजा है। घोर कलिकाल में तो राम का नाम ही एकमात्र कल्पवृक्ष है। अतः तुलसीदास का निष्कर्ष है—

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू।
राम नाम अवलंबन एकू।।[11]

तुलसी ने रामनाम की ओट लेते समय विनयपूर्वक यह कहकर कि कलि में कर्म, भक्ति और विवेक (ज्ञान) रह ही नहीं जाते अतः एकमात्र राम का नाम ही अवलंब है, उन साधनों का न तिरस्कार किया है, न निषेध। वे जानते हैं कि जैसे भूमि में ही सब बीज अंकुरित हो सकते हैं, आकाश में ही सब नक्षत्रों का निवास है वैसे ही राम नाम समस्त धर्मों का आकर है—

जथा भूमि सब बीज मै, नखत निवास अकास।
रामनाम सब धरम मै जानत तुलसीदास।।[12]

अतः वे निश्चिंत हैं कि रामनाम ही जापक के अंतःकरण में समयोचित आवश्यक धर्मों की प्रेरणा देता रहेगा।

इसमें संदेह नहीं कि श्रद्धासहित नामजप करते रहने वाले भक्त के मन में उस मनोवैज्ञानिक रक्षाकवच के प्रभाव से अद्भुत सात्त्विक गुणों का उत्कर्ष होता है और वह क्रमशः नामी के गुण, कर्म, शील, स्वभाव की ओर आकृष्ट होता जाता

है, जिसके फलस्वरूप वह पहले से अच्छा मनुष्य बनता है। फिर भी रामनाम की इस महिमा को आधुनिक विचारक अपने-अपने संस्कारों के अनुरूप स्वीकार या अस्वीकार कर सकते हैं। प्रश्न अभी उसकी सत्यता या असत्यता का नहीं है, वह अलग विचार्य विषय हो सकता है। अभी प्रश्न तो यह है कि मध्यकाल के अन्य संतों-भक्तों की तरह नाम-महिमा का गान करने के बाद तुलसी भी क्या उन्हीं की तरह केवल निर्वैयक्तिक या अतिशय वैयक्तिक साधनाओं में लीन हो गये? रामनाम नींव सही, उस पर उन्होंने अपनी साधना का भवन कैसा उठाया? यहीं अपनी समाजोन्मुखी वैयक्तिक साधना के कारण तुलसी अन्य संतों, भक्तों से पृथक् हो जाते हैं। उसका एक प्रमाण यह भी है कि उन्होंने राम के नाम पर जितना बल दिया है, राम के काम पर भी उतना ही बल दिया है। उनके आदर्श भक्त चरित्र एकांत में साधना ही नहीं करते, राम का काम सिद्ध हो, इसके साधन भी बनते हैं।

तुलसी ने राम के काम पर कितना जोर दिया है, यह इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जायेगा। निषादराज को जब यह लगता है कि भरत संभवतः श्रीराम पर आक्रमण करने की योजना बनाकर चित्रकूट जा रहे हैं तब वे राम के काम आने की भावना से भरत से युद्ध कर मृत्यु तक का वरण करने के लिए तैयार होकर कह उठते हैं, 'समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा, रामकाजु छनभंगु सरीरा।'[13] सुग्रीव सीता की खोज के लिए वानरों को भेजते समय 'रामकाजु अरु मोर निहोरा'[14] कह कर उत्साहित करते हैं। किसी भी सत्कार्य के लिए दूसरे को प्रवृत्त करते समय हिन्दी भाषी जन इस कथन को आज लोकोक्ति की तरह व्यवहृत करते हैं। श्रीराम के कार्य के लिए शरीर-त्याग करने वाले जन तुलसी की दृष्टि में अनन्य रूप से धन्य, बड़भागी और हरिपुर के अधिकारी हैं, तभी उन्होंने अंगद से कहलवाया था, 'कह अंगद बिचारी मन माहीं, धन्य जटायू सम कोउ नाहीं। राम काज कारन तनु त्यागी, हरिपुर गयउ परम बड़भागी।[15] हनुमान को सागर लांघने के लिए अभिप्रेरित करते हुए जामवंत ने कहा था, 'राम काज लगि तव अवतारा।'[16] प्रभु का कार्य संपन्न किये बिना सच्चे प्रभुभक्त विश्राम कैसे कर सकते हैं? हनुमान की यह उक्ति उनकी भावना की निश्छल अभिव्यक्ति है, 'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम।'[17] राम का कार्य जिससे सधे, भक्त वही करता है, व्यक्तिगत मान-अपमान का विचार उसे नहीं रहता। हनुमान मेघनाद के हाथों बंदी बनकर रावण की सभा में इसीलिए उपस्थित हुए थे कि शायद उनके समझाने से रावण को सद्बुद्धि आ जाये। उन्होंने द्विधाहीन शब्दों में कहा था, 'मोहि न कछु बाँधे कर लाजा, कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा।'[18] कार्य सिद्ध होने पर भक्त उसका श्रेय स्वयं नहीं लेता, प्रभु की कृपा को देता है और साधन बन पाने के कारण अपने जन्म को सफल मानता है। उसकी मान्यता है, 'प्रभु की कृपा भयउ सबु काजू, जन्म हमार सुफल भा आजू।'[19] राम

के काम आ जाना ही भक्त के जीवन की चरितार्थता है, इसे तुलसी ने लक्ष्मण को शक्तिबाण लगने के प्रसंग के माध्यम से गीतावली में बहुत खूबी से उभारा है। हनुमान से लक्ष्मण के घायल होने का संवाद सुनकर सुमित्रा माता की जो मनःस्थिति हुई उसे तुलसी ने इन शब्दों में अंकित किया है—

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामिकाज संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरे हैं।
सुवन सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति-भगति बरे हैं।
छिन-छिन गात सुखात छिनहि छिन हुलसत होत हरे हैं।।[20]

स्वामी राम के लिए प्रतिपक्षी सुभट से संग्राम में ललकार कर भिड़ने और लोहा लेने के कारण लक्ष्मण गंभीर रूप से घायल हो गये हैं, यह सुनकर सुमित्रा माता को शोक और संतोष दोनों हुए। पुत्र मुमूर्षु है, जब यह विचार मन में आता तो उनका शरीर सूख जाता किन्तु जब उनके मन में यह भाव आता कि प्राणों को संकट में डालकर आज लक्ष्मण राम की भक्ति में खरा सिद्ध हुआ तो उनका शरीर उल्लसित हो हरा हो उठता। इसी पद में तुलसी ने सुमित्रा माता से शत्रुघ्न को यह आज्ञा दिलाई है कि अब वे जाकर लक्ष्मण का स्थान लें। सुमित्रा माता के दिव्य चरित्र का किंचित आभास दे पाने के कारण यह पद तो महिम्न है ही, इस दृष्टि से भी मैं इसका महत्त्व मानता हूँ कि इससे यह बिलकुल साफ हो जाता है कि लक्ष्मण की तरह श्रीराम के कार्य के लिए प्राणों को संकट में डालनेवालों के लिए ही यह कहा जा सकता है कि वे 'रघुपति-भगति बरे हैं।'

प्रश्न उठ सकता है कि मानस के अनुसार क्या है राम का काम और आज का मनुष्य उसे कैसे संपन्न कर सकता है? यह स्मरण रखना चाहिए कि मानस जीवन के प्रति एक विशिष्ट मूलभूत दृष्टि निरूपित करने वाला काव्यग्रंथ है, किसी सरकार या राजनीतिक दल के कार्यक्रम को शब्दबद्ध करने वाला दस्तावेज नहीं। कार्यक्रम बदली हुई परिस्थितियों में बदले जा सकते हैं या पुराने पड़ जा सकते हैं। मानस की दृष्टि धर्मपरायण (अर्थात् कर्तव्यपरायण) मर्यादावादी (अर्थात् सामाजिक चेतना-संपन्न) आस्तिक (अर्थात् सत्चित् और आनंद के चरम मूल्यों के प्रति आस्थायुक्त) दास्य भाव के भक्त (अर्थात् चराचर जगत् रूपी प्रभु की परम प्रेमपूर्वक सेवा करने वाले अनन्य सेवक) की दृष्टि है, जिसका लक्ष्य है ऐसे विषमता रहित समाज की सृष्टि करना जिसमें सब सुंदर हों, सब नीरोग हों, सब निर्दंभ और धर्मरत हों, चतुर और गुणी हों, गुणज्ञ और पंडित हों, ज्ञानी और कृतज्ञ हों, जिसमें कोई भी दरिद्र-दुःखी दीन न हो; अबुध, लक्षणहीन और कपटी न हो। इसीलिए यह मानते हुए कि राम के जन्म के अनेकानेक हेतु हो सकते हैं। तुलसी ने गीतोक्त हेतुओं को दुहराते हुए कहा है कि जब-जब धर्म की हानि होती

है, अभिमानी, अधम, असुर अवर्णनीय अनीति करने लगते हैं; विप्र, धेनु, देवता और धरती को कष्ट देने लगते हैं, तब-तब प्रभु विविध शरीर धारण कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं, असुरों को मारकर देवताओं और श्रुतियों की मर्यादा की रक्षा करते हैं। यह ठीक है कि वैयक्तिक साधना पर बल देने वाले आचार्यों की यह स्थापना भी उन्हें स्वीकार है कि भक्तों के साथ लीला करने के लिए उन्हें सुख देने के लिए प्रभु अवतार ग्रहण करते हैं पर सामाजिक मंगल विधान को भी वे अवतार के प्रमुख कारणों में से एक मानते हैं। इसीलिए निशाचरों द्वारा भक्षित ऋषियों की अस्थियों का समूह देखकर करुणार्द्र हो उनके राम भुजा उठाकर अपना यह वज्र संकल्प घोषित करते हैं कि मैं पृथ्वी को निशाचर विहीन कर दूंगा, 'निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।[21] इस संदर्भ में यह भी स्मरणीय है कि निशाचर से तुलसी का अभिप्राय काल्पनिक योनिविशेष से न होकर समाज के अत्याचारी व्यक्तियों से था। तुलसी ने बहुत स्पष्ट शब्दों में लिखा है—

बरनि न जाई अनीति, घोर निशाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहि कवन मिति।।

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा।
जे लम्पट पर धन पर दारा।।
मानहिं मातु पिता नहिं देवा।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।।
जिनके यह आचरन भवानी।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी।।[22]

ऐसे निशाचरी अन्याय का प्रतिरोध कर रामराज्य (सामाजिक न्याय पर आधारित राज्य) की स्थापना के कार्य से जो जुड़ता है वह किसी भी देश या किसी भी काल में क्यों न हो, राम का काम करता है। राम का काम केवल ध्वंस-मूलक नहीं है, इसे बराबर याद रखना चाहिए। अन्याय के विध्वंस के साथ-साथ व्यक्ति और समाज दोनों के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक स्तरों पर उन्नयन का कार्य भी राम का काम है। मेघनाद से युद्ध करते हुए लक्ष्मण भी राम का काम कर रहे थे और अयोध्या में बैठे न्याययुक्त राज्य संचालन कर भरत भी राम का ही काम कर रहे थे। कभी-कभी मन में यह भावना जागती है कि लंका के मोर्चे पर लड़ने वाले ही राम के सच्चे सेवक थे। औरों की बात तो जाने दीजिए, लक्ष्मण के घायल होने का समाचार पाकर स्वयं भरत ने यह परिताप व्यक्त किया था, 'अहह दैव मैं कत जग जायऊँ, प्रभु के एकहु काज न आयउँ,[23] इस भावपूर्ण उक्ति का यह अर्थ नहीं है कि भरत प्रभु के किसी काम नहीं आये थे। यह तो प्रभु के अधिकाधिक काम में आने की लालसा की अभिव्यक्ति मात्र है। कुछ लोग अपने भोलेपन के

कारण पूछ बैठते हैं कि भरत के मन में यदि इतना ही परिताप था तो वे तत्काल युद्ध में भाग लेने के लिए लंका चले क्यों नहीं गये? वे भरत रघुवर के 'अगम सनेह' को नहीं जानने के कारण ही ऐसा कहते हैं। 'सबतें सेवक धरमु कठोरा'[24] माननेवाले भरत उस समय भी 'अग्यासम न सुसाहिब सेवा'[25] के सिद्धांत का पालन करने के कारण ही अयोध्या में अपने कर्तव्य पर अडिग रहे। तुलसीदास ने गीतावली में इस प्रसंग में भरत के अंतर्द्वंद्व का मार्मिक चित्रण इस प्रकार किया है—

आयसु इतहि स्वामि-संकट उथ, परत न कछू कियो है।
तुलसीदास बिहर्‌यो अकास सो कैसे के जात सियो है।।[26]

भरत ऊहापोह में पड़े सोच रहे हैं कि इधर स्वामी की आज्ञा है 14 वर्षों तक अयोध्या में रहकर राज्य संचालन करने की, उधर स्वयं स्वामी संकटग्रस्त हैं, कुछ करते नहीं बनता, मानो आकाश फट गया हो, वह कैसे सिया जाये! फिर भी; अपनी भावनाओं पर पत्थर रखकर भी वे आज्ञापालन में ही रत रहते हैं, युद्ध के मोर्चे पर नहीं चढ़ दौड़ते। उनके इस सूक्ष्म कर्तव्य-ज्ञान को समझकर ही हनुमान की यह दशा हो गयी थी, 'धनि भरत! धनि भरत! करत भयो मगन मौन रहयो मन अनुराग रयो है।'[27] भरत अपने इस आचरण से यही दर्शाते हैं कि महत् कार्य की सिद्धि उस कार्य में रत व्यक्तियों द्वारा उसके बड़े-छोटे, आकर्षण-अनाकर्षण सभी अंगों को महत्त्व देकर गुरुजनों द्वारा प्रदत्त, सहज प्राप्त या स्वयं स्वीकृत कार्यांश को अनुशासनपूर्वक करते रहने से ही हो सकती है। अतः पताका के दंड की भांति स्वयं प्रसिद्धिपराङ्मुख रहकर भी अपने कर्तव्य का पालन करते रहना राम के सेवकों का सहज लक्षण होना चाहिए। अग्रिम मोर्चे पर रहकर यश प्राप्त करने की दुर्बलता उनमें नहीं होनी चाहिए।

फिर सच बात तो यह है कि मोर्चा कहाँ नहीं है! हर व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र में काम करते समय मोर्चे पर ही तो खड़ा है। यहाँ तक कि हर एक के मन में भी राम-रावण युद्ध चल रहा है। यदि व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह का शिकार होकर विषय-वासना की तृप्ति को ही अपना परम ध्येय मान बैठता है तो मुंह से वह चाहे कुछ भी कहे, वास्तव में वह रावण के पक्ष में लड़ता है। तुलसीदास ने प्रत्येक व्यक्ति के वपुष ब्रह्माण्ड में चलनेवाले राम-रावण युद्ध का चित्रण करते हुए स्पष्ट कहा है, 'मोह दसमौलि, तदभ्रांत अहंकार, पाकारिजित काम विश्रामहारी। लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ठ, बिबुधांतकारी।।[28] अपना मोह (अज्ञान) ही रावण है, अहंकार ही कुंभकर्ण है, काम ही इंद्रजेता मेघनाद है, लोभ, मत्सर और क्रोध ही रावण के सेनानायक अतिकाय, महोदर और बिबुधांतक हैं। इसी तरह उसी पद में आगे कहा गया है कि यम-नियम आदि ही देवता हैं, मोक्ष के साधन ही राम की सेना के भालू-बंदर हैं, ज्ञान ही सुग्रीव हैं, वैराग्य ही हनुमान

हैं। मोहग्रस्त व्यक्ति जब अपने भीतर के मोर्चे पर ही हार जाता है तब वह राम का काम कैसे कर सकता है। राम का काम तो अपने सद्‌गुणों को जगाकर अपने कर्तव्य कर्म में सेवा भाव से रत रहना ही है। अपने मोर्चे पर सफलता पाने वाले को प्रभु जो काम उचित समझेंगे, सौंपते चले जाएंगे। लक्ष्मण को भक्तियोग का उपदेश देते समय प्रभु ने उसका प्रथम साधन ही इसी भाव को बताया था। 'प्रथमहिं बिप्रचरन अति प्रीती, निज-निज धरम-निरत स्रुति रीती।'[29] अपनी स्वस्थ परंपरा के प्रति श्रद्धावान् रहकर जो व्यक्ति अपना कर्तव्य कर्म करता रहता है, उसी के मन में विषयों के प्रति विराग होता है और तभी श्रीराम के धर्म के प्रति अनुराग संभव हो सकता है। स्पष्ट है कि तुलसीदास नामजप के प्रति श्रद्धालु होते हुए भी निष्क्रियता के नहीं, कर्म को अपने में समेट लेनेवाली भक्ति के प्रचारक थे। तभी उन्होंने जंगमतीर्थराज संत समाज के संगम में यदि राम-भक्ति को गंगा और ब्रह्मविचार को सरस्वती कहा था तो विधिनिषेधमय कर्म की कथा को यमुना बताकर उसे ही कलिकाल का मल दूर करने में समर्थ बताया था।[30] इसी प्रकार 'सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग'[31] कहकर तुलसीदास ने गृहस्थों को तो अनिवार्यतः कर्म करते रहने का अर्थात् श्रीराम के अनुकूल कर्म करते रहने का निर्देश दिया है।

तुलसी के उपास्य श्रीराम स्वयं सैकड़ों संकट झेलकर भी अपने कठिन कर्तव्य कर्म का निर्वाह करते रहे। तुलसीदास ने बहुत उत्साह के साथ उनके दिव्य कर्मों का—मर्यादापूर्ण चरित का गुणगान किया है और बार-बार उनकी इस महिमा की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। राजतिलक के बाद वंदना करते हुए चारों वेदों के माध्यम से तुलसी ने दंडकारण्य के कंटकों से छिदे श्रीराम के चरण-युगल का भजन करने की प्रेरणा दी है–

ध्वज, कुलिस, अंकुस, कंजजुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद, मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे।[32]

श्रीराम के चरण अपने कर्तव्य कर्म की पूर्ति में काँटों से छिदें और उनके भक्त निष्क्रिय रहें, यह कैसे संभव है। कर्मरत उपास्य की यह बाँकी छवि भक्तों को भी राम के काम के लिए केवल पैरों में नहीं, रोम-रोम में काँटे छिद जायें तो भी कर्तव्य पथ पर बढ़ते जाने के लिए अभिप्रेरित करती रहेगी। इसी स्तुति में वेदों ने यदि एक ओर 'जपि नाम तव बिन श्रम तरहिं भवनाथ सो समरामहे' कहकर नामजप के महत्त्व को स्वीकारा है तो 'मन, वचन, कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागही' कहकर मन-वाणी और कर्म की एकता एवं निर्विकारता पर भी जोर दिया है। तुलसीदास ने यदि विनयपत्रिका में कहा है—

प्रिय रामनाम तें जाहि न रामो।
ताको भलो कठिन कलिकालहुँ आदि मध्य परिनामो।[33]

तो गीतावली में यह भी कहा है–

मुद मंगल मय संत समाजू, जो जग जंगम तीरथ राजू।
राम भक्ति जहँ सुरसरिधारा, सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा।
विधिनिषेधमय कलिमल हरनी, करम कथा रविनंदनि बरनी।।

मानस 1/2/7-9

नित नये मंगल मोद अवध सब, सब बिधि लोग सुखारे।
तुलसी तिन्ह सम तेउ जिन्हके प्रभुतें प्रभु-चरित पियारे।[34]

एक ओर राम से भी अधिक प्रिय राम का नाम हो, दूसरी तरफ प्रभु से भी अधिक प्रिय प्रभु चरित हो तभी भक्त की भावना में पूर्णता आती है। राम नाम जपते हुए राम के चरित्र से प्रेरणा प्राप्त कर राम के काम में जुटे हुए भक्तों का निर्माण करना ही तुलसी का उद्देश्य है। इसीलिए उनका संदेश है––

राम सुमिरि साहसु करिय मानिय हियै न हारि।[35]

संदर्भ संकेत

1. परशुराम की प्रतीक्षा (प्र.सं.) पृ. 24
2. लो. तिलक कृत गीता रहस्य के दशम मुद्रण के पृ. 525 पर उद्धृत
3. देवर्षि नारद द्वारा कथित एवं चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित
4. सातुकर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा। ––नारदीय भक्ति-सूत्र, सं. 25
5. मानस 7।119 क
6. वही 4।3
7. वही 3।31।9
8. मानस 1।185।6
9. वही 1।21
10. वही 1।22।6
11. मानस 1।27।7
12. दोहावली 29
13. मानस 2।190।3
14. वही 4।22।6
15. वही 4।27।7-8
16. वही 4।30।6
17. वही 5।1
18. वही 5।21।6
19. वही 5।30।4
20. गीतावली 6।13।1-4
21. मानस 3।9
22. वही 1।183-184।1-3
23. मानस 6।60।3
24. वही 2।203।7
25. वही 2।301।4
26. गीतावली 6।10।7-8
27. वही 6।11।8
28. विनय पत्रिका 57।7-8
29. मानस 3।16।6
30. मानस 1।2।7-9
31. मानस 2।172
32. मानस 6।13।4।3-4
33. विनय पत्रिका 228।12
34. गीतावली 1।44।9-10
35. रामाज्ञा प्रश्न 5।1।3

साभार :
विष्णुकान्त शास्त्री, अमृत महोत्सव अभिनन्दन ग्रंथ से